अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष- 44, अंक- 1, 16-31 अगस्त 2020

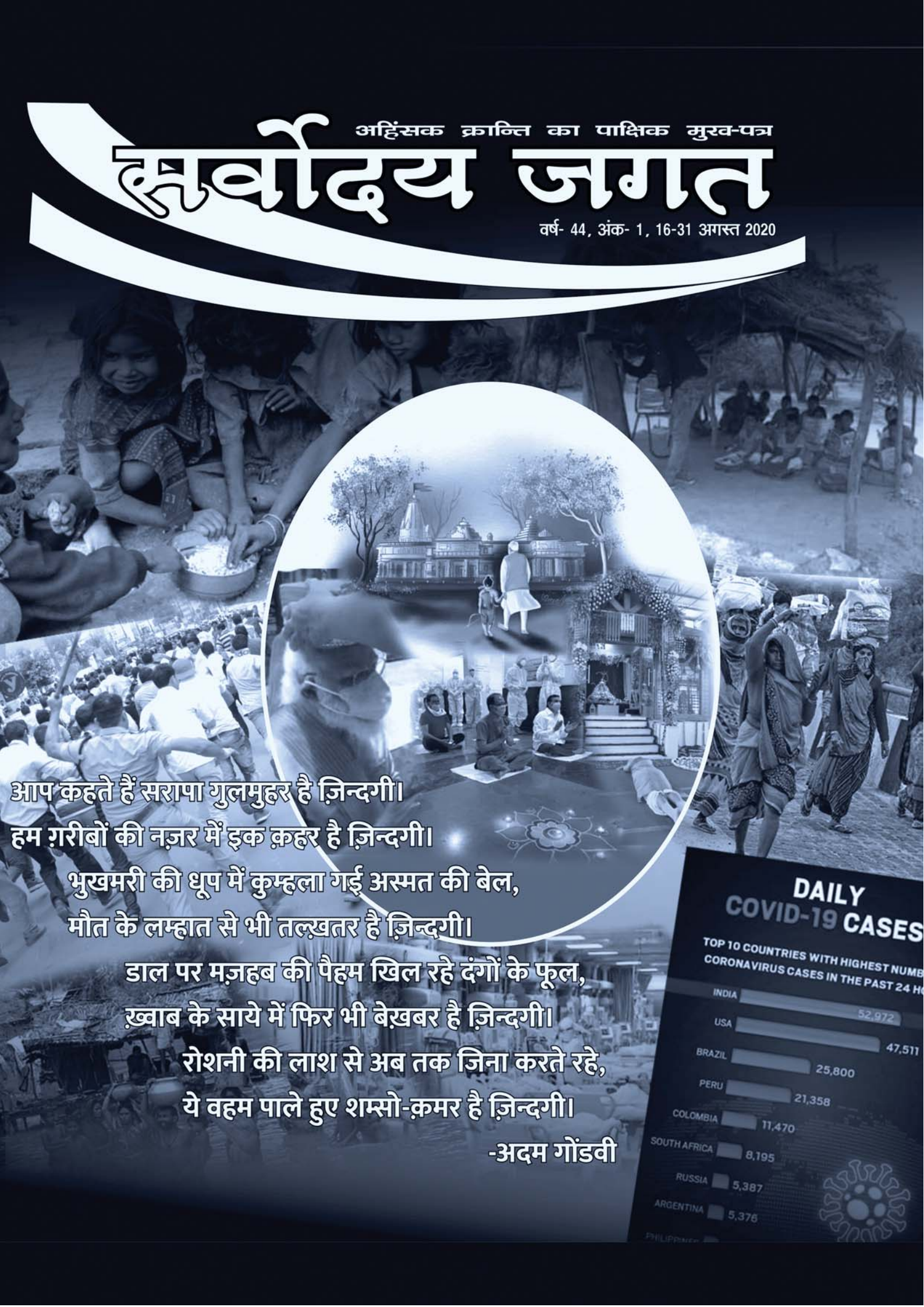

आप कहते हैं सरापा गुलमुहर है ज़िन्दगी।
हम ग़रीबों की नज़र में इक क़हर है ज़िन्दगी।
भुखमरी की धूप में कुम्हला गई अस्मत की बेल,
मौत के लम्हात से भी तल्ख़तर है ज़िन्दगी।
डाल पर मज़हब की पैहम खिल रहे दंगों के फूल,
ख़्वाब के साये में फिर भी बेख़बर है ज़िन्दगी।
रोशनी की लाश से अब तक जिना करते रहे,
ये वहम पाले हुए शम्सो-क़मर है ज़िन्दगी।

-अदम गोंडवी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक
वर्ष : 44, अंक : 01, 16-31 अगस्त 2020

अध्यक्ष
महादेव विद्रोही

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994
संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह **भवानी शंकर कुसुम**
प्रो. सोमनाथ रोडे **अरविन्द अंजुम**
अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. अध्यक्ष की कलम से... 3
3. कोरोना ने नहीं, हमें हमारे नेतृत्व ने... 4
4. मंदिर निर्माण का श्रेय इतिहास में... 5
5. बाबा किस मुंह से जाओगे... 6
6. क्या राम मंदिर की आड़ में अपनी... 7
7. प्रेमचंद, सुल्ताना डाकू और नई शिक्षा... 8
8. नयी शिक्षा नीति का उद्देश्य... 9
9. पंडित मुंशी रहमान खां रामायणी... 10
10. इतिहास का चेहरा बदलने की... 13
11. यह पत्रकारिता के पतन का दौर... 14
12. प्रशांत भूषण के जरिये खुलेंगी... 15
13. चीफ जस्टिस का मतलब सुप्रीम कोर्ट... 16
14. यह बहिष्कार प्रतिशोध है... 17
15. एक ब्राह्मण का सफाईकर्मी होना... 18
16. गतिविधियां एवं समाचार... 19
17. कविता... 20

संपादकीय

कोरोना काल में समुदाय बचायें

कोरोना महामारी ने राजसत्ताओं को जन-अधिकार छीनने का नया अवसर प्रदान किया है। ऐसे समय में जब आम नागरिक को कोरोना से बचने के तमाम उपाय बताये जा रहे हैं और सरकार दूरगामी प्रभाव वाले निर्णय ले रही है, जिन नीतियों के लागू होने के पहले देशव्यापी बहस होनी चाहिए थी, उन्हें सरकार तेजी के साथ लागू करती जा रही है। सार्वजनिक क्षेत्र के तमाम उपक्रमों का निजीकरण, वैश्विक पूंजी का निर्बाध प्रवेश, खनिजों व संसाधनों को कारपोरेट जगत के नियंत्रण में देने का निर्णय, नयी शिक्षा नीति, मजदूर व किसान विरोधी नीतियों को लागू करना आदि तमाम ऐसे उदाहरण हैं।

आपदा को अवसर में बदलने का यह केवल एक पहलू है। एक दूसरा पहलू भी है, जो अधिक सूक्ष्म एवं मनुष्य को उसकी सामूहिक चेतना से च्युत करने वाला है। लोगों को समाज में अलग-थलग करना, संग-विहीन कर एकाकीकरण की स्थिति को बनाये रखना राजसत्ताओं को अच्छा लगता है, क्योंकि इसके बाद व्यक्ति को दब्बू आदेशपालक बना देना आसान हो जाता है। लोगों के सामूहिक आंदोलन या विरोध की संभावना क्षीण हो जाती है। इस तरह संग-विहीन एकाकीकरण के माध्यम से लोगों की प्रतिकार क्षमता को खत्म करना राजसत्ताओं को निरंकुश व सर्वसत्तावादी बनाने का कारण बनता जाता है। कोरोना के दौर में व्यापक मनोवैज्ञानिक अभियान चलाया गया कि लोग (अ) सामाजिक दूरी बनाये रखें। एक-दूसरे से मिलें-जुलें नहीं तथा जहां तक संभव हो, घर पर ही रहें। लोगों में एक भय एवं कायरता की मानसिकता का निर्माण किया जा रहा है। व्यक्तियों के एकाकीकरण के दौरान लोग अपने समाज से कट जायें, ऐसे में उन्हें टी. वी. देखकर जश्न मनाने, दिये जलाने आदि के अवसर दिये जायेंगे। अपने घरों में बंद रहकर, एकाकी रहकर, सरकार प्रायोजित जश्नों में आभासी भागीदारी से धीरे-धीरे सामुदायिकता कमजोर होती जायेगी।

मनुष्य लाखों वर्षों से समुदाय में रहने, साथ-साथ जीने और सुख-दुख में सहभागी होने वाला प्राणी रहा है। आपदाओं का मिल-जुलकर सामना करने का आदी रहा है। संक्रामक रोगों के आने पर भी समुदायों एवं परिवारों में सूतक की व्यवस्था रही है। आधुनिक और विशेषकर औद्योगिक समाजों के निर्माण में समुदाय का स्वरूप नष्ट किया गया एवं सामाजिकताविहीन लोगों (मजदूरों) के समुच्चय का निर्माण किया गया। संग-विहीन एकाकीकरण के बीज इसमें पहले से ही मौजूद थे। कोरोना में राजसत्ताओं ने मनुष्यों की आपसी निकटता को खत्म करने का एक व्यापक मनोवैज्ञानिक अभियान छेड़ दिया। मनुष्य की परस्पर निकटता की आकांक्षा तथा समुदाय बनने की संभावना को जड़मूल से खत्म करने का यह अभियान हमारी सामुदायिकता का नुकसान है।

किसी भी आंदोलन के लिए लोगों की परस्पर निकटता एवं साथ का होना जरूरी है। यह काम सोशल मीडिया के माध्यम से संभव नहीं है। लेकिन लोगों में परस्पर निकटता व सामूहिक अभिक्रम के प्रति भय एवं तिरस्कार का भाव भरा जा रहा है। कोरोना की स्थिति का फायदा उठाकर राजसत्ताओं ने लोगों की सोच में ऐसा बदलाव किया है कि लोग डर कर अन्य लोगों के प्रति निकटता से बचे रहना चाहते हैं। अन्य व्यक्ति की निकटता से भय ने सहभागिता आधारित मानवीय समुदाय की अवधारणा पर ही चोट पहुंचा दी है। लोगों के बीच संपर्क की कड़ियां टूटने से सामाजिक एवं पारिवारिक हिंसा भी बढ़ेगी।

जनता को इस मनोवैज्ञानिक भय से बाहर निकलना होगा। जिस कोरोना का इतना बड़ा भय खड़ा किया जा रहा है, उससे संक्रमित लोगों में केवल 2 से 2.5 प्रतिशत लोगों की मृत्यु हो रही है और जिनकी मृत्यु हो रही है, वे पहले से भी किसी गंभीर रोग के मरीज हैं। मृत्यु के बाद पोस्टमार्टम न होने से मृत्यु के वास्तवकि कारण का पता लगना भी मुश्किल है। भय की जगह सामूहिक संकल्प एवं सावधानी की जरूरत है। समुदाय जिम्मेदारी लेंगे तो उनमें प्रतिरोधक क्षमता बढ़ेगी।

समुदायों को पुनः संगठित करने की आवश्यकता है। क्रांतिकारी शक्तियों का दायित्व है कि वे समुदायों, विशेषकर ग्राम-समुदायों को भय की सोच से मुक्त करायें तथा सामूहिक कर्म के कुछ कार्यक्रमों को लें। राजसत्ताओं द्वारा समाजों को यांत्रिक व्यक्तियों का समुच्चय बनाने के इस अभियान को हर स्तर पर चुनौती देना होगा, उसे विफल करना होगा।**–बिमल कुमार**

अध्यक्ष की कलम से

❑ महादेव विद्रोही

प्रो. अपूर्वानंद के बाद अगली बारी किसकी?

पिछले दिनों दिल्ली पुलिस ने गांधी विचार के गहन अध्येता तथा दिल्ली विश्वविद्यालय के प्राध्यापक प्रो. अपूर्वानंद को बुलाकर उनसे पांच घंटे तक पूछताछ की। दिल्ली पुलिस ने उनका मोबाइल भी जब्त कर लिया। दिल्ली पुलिस यह साबित करने में लगी हुई है कि दिल्ली के दंगों में प्रो. अपूर्वानंद का हाथ था। इससे पहले इसी तरह अन्य कई लोगों को भी दिल्ली के दंगों में फंसाने की कोशिश की गयी है। एक एफआईआर में तो स्वराज भारत के संयोजक योगेन्द्र यादव का नाम भी शामिल है।

ऐसा लगता है कि सरकार का इरादा एक-एक कर उन सभी लोगों को ठिकाने लगाने का है, जो सरकार की राय से सहमत नहीं हैं। इस क्रम में विनोद दुआ तथा हर्षमंदर से लेकर अनेक लोगों के नाम हैं। अभी सर्वोच्च न्यायालय के वरिष्ठ अधिवक्ता प्रशांत भूषण पर न्यायालय की अवमानना का केस दर्ज किया गया है। यह सुनकर ही हंसी आती है। इतने बड़े वकील, लोकतंत्र के सजग प्रहरी तथा नागरिक अधिकारों के लिए हमेशा जूझते रहने वाले प्रशांत भूषण का नाम अदालत की अवमानना में घसीटा जायेगा, इसकी कोई कल्पना भी नहीं कर सकता है। इसका मतलब साफ है कि सामाजिक सरोकारों के लिए लड़ने वाले हममें से किसी का भी अगला नंबर आ सकता है।

अररिया की घटना मानवता तथा बिहार सरकार के लिए कलंक

बीती 6 जुलाई को अररिया, बिहार में एक 22 वर्षीय लड़की के साथ सामूहिक बलात्कार की घटना हुई। कानून के राज में पीड़ित लड़की को ही जेल भेज दिया गया। बाद में उसकी मदद के लिए दो सामाजिक कार्यकर्ता सामने आये, उन्हें भी जेल भेज दिया गया। बलात्कार पीड़ित नवयुवती और उसे न्याय दिलाने आये लोगों को बिहार प्रशासन द्वारा जेल भेजने की घटना यह साबित करती है कि बलात्कार के प्रति उनमें कोई संवेदनशीलता नहीं है। शायद बिहार का प्रशासन व पुलिस बलात्कार को बहुत सामान्य घटना मानकर चल रही है कि ऐसा तो होता ही रहता है।

बलात्कार पीड़िता को जब स्थानीय दंडाधिकारी के समक्ष प्रस्तुत किया गया, तब उसका बयान बताकर उसे एक कागज दिया गया, जिस पर उसे हस्ताक्षर करने को कहा गया। पीड़िता ने मजिस्ट्रेट को कहा कि इसमें क्या लिखा है, यह उसे पढ़कर सुनाया जाय। उसके इतना कहते ही मजिस्ट्रेट का पारा आसमान पर चढ़ गया और उन्होंने उसे बदजात औरत कह डाला। न्यायालय के इतिहास में यह शायद अभूतपूर्व घटना होगी, जब एक न्यायिक दंडाधिकारी अपराधियों जैसा व्यवहार करता हो। भारत का कानून हर व्यक्ति को यह अधिकार देता है कि यदि किसी कागज पर उसके हस्ताक्षर कराये जा रहे हों, तो उसे पढ़ने दिया जाय या पढ़कर सुनाया जाय। यह खुशी की बात है कि पीड़िता को न्याय दिलाने के लिए आगे आने वाले दोनों सामाजिक कार्यकर्ताओं, जिनमें से एक युवती भी है, को व्यक्तिगत मुचलके पर छोड़ दिया गया है। इस घटना को यदि अररिया की अदालत में चलाया गया तो वहां पीड़िता को न्याय मिलेगा, इसकी संभावना बिल्कुल क्षीण है। इसलिए इस केस को किसी दूसरे न्यायालय में चलाया जाना चाहिए, जिस पर विश्वास किया जा सके।

अयोध्या में सरकारी जलसा

5 अगस्त को अयोध्या में एक सरकारी जलसे का आयोजन किया गया, जिसकी तैयारी में पूरे उत्तर प्रदेश के प्रशासन को झोंक दिया गया। जगह-जगह कई द्वार बनाये गये। उसमें अशोक सिंहल का भी चित्र लगाया गया था, जिन पर न्यायालय में आपराधिक मामले चल रहे हैं। यह देखकर अनेक सवाल उपस्थित हो गये हैं। पहला यह कि जिन पर आपराधिक वाद चल रहे हैं और गंभीर आरोप हैं, क्या ऐसे लोगों की तस्वीर लगाकर सरकार यह संदेश देना चाहती है कि न्यायाधीश उन पर कोई फैसला करने में पहले सचेत हो जायें! क्योंकि सरकार उनके साथ खड़ी है।

सवाल राम पर नहीं है, सरकार के रवैये पर है। देश में दशकों से राम के नाम पर जो राजनीति चल रही है, वह राम के नाम का व्यापार करने वाली है। ऐसी राजनीति के विरोध में उठने वाली हर आवाज को राम के विरोध में उठने वाली आवाज कहकर खारिज कर दिया जाता है। यह कोई आज ही नहीं हो रहा है। रामकथा के अमर गायक संत तुलसी जब रामचरित मानस की रचना कर रहे थे, तब भी रामनाम के व्यापारियों को तुलसी फूटी आंख नहीं सुहा रहे थे। लोकभाषा अवधी में लिखी उनकी रामकथा को कितनी ही बार चुरा लिया गया, उसे नष्ट कर दिया गया और कदम-कदम पर संत कवि को अपमानित किया गया। तुलसी को अपनी पीड़ा इन शब्दों में लिखनी पड़ी -

मांग के खाइबो, मसीत में सोइबो,
लेबे को एक न देबे को दोऊ।

आज पूरे देश में तालाबंदी चल रही है, कोरोना संक्रमितों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है तथा नित्य नये रिकार्ड बन रहे हैं। यह लिखते लिखते उत्तर प्रदेश में कोरोना पीड़ितों की संख्या 122609 और मृतकों की संख्या 2069 हो चुकी है। कई मंत्री, विधायक तथा सरकारी अधिकारी इसकी जद में आ गये हैं। इसमें अयोध्या के मंदिरों के पुजारी और अनेक सुरक्षाकर्मी भी शामिल हैं। केन्द्रीय गृहमंत्री और भूतपूर्व राष्ट्रपति प्रणव मुखर्जी भी इससे अछूते नहीं रहे।

ऐसे में जरूरत इस बात की थी कि इस महामारी से लड़ने के लिए मुकम्मल योजना बनाकर उसे मुस्तैदी से कार्यान्वित किया जाता। इसके बजाय अयोध्या में सैकड़ों लोगों को जमा करके सरकार ने यह सिद्ध कर दिया है कि तालाबंदी तो सामान्य लोगों के लिए है, सरकार के लिए इसका कोई मतलब नहीं है। वह जैसा चाहे, वैसा जलसा कर सकती है। इसका मतलब है कि देश का कानून सबके लिए समान नहीं है। अगर इस बात पर लोगों का विश्वास दृढ़ हो गया तो यह लोकतंत्र के लिए एक दुखद अध्याय होगा। देश के सारे सामाजिक और राजनीतिक कार्यक्रम कोरोना के चलते प्रतिबंधित कर दिये गये हैं। ऐसे में अयोध्या का यह कार्यक्रम किया जाना कितना मुनासिब था? ❑

कोरोना ने नहीं, हमें हमारे नेतृत्व ने हराया है!

❑ लाल बहादुर सिंह

जब कोरोना वायरस ने चीन की दीवार लांघकर दुनिया के दूसरे देशों में अपना प्रभाव दिखाना शुरू किया, तो दुनिया के विकसित और सुविधासम्पन्न देशों ने अपनी जनता की सुरक्षा के लिए अपनी सर्वोत्तम सुविधाएं झोंक दीं। आने वाले संकट की आशंका को पहले ही भांपकर इन देशों ने समय रहते लॉकडाउन और यात्राओं पर रोक लगाने जैसी सावधानियां अपना लीं और अपने हेल्थ इन्फ्रास्ट्रक्चर को यथासंभव सक्षम व मजबूत बनाकर कोरोना के विरुद्ध मैदान में कूद पड़े। यह लगभग नवंबर 2019 से मार्च 2020 के बीच का समय था। भारत में विपक्षी नेताओं की लगातार चेतावनियों के बावजूद सरकार इस वैश्विक वातावरण से असंपृक्त और लापरवाह बनी रही और अपनी राजनीतिक गतिविधियों में मुब्तिला रही। दुनिया के कई विशेषज्ञों ने यह कहना शुरू कर दिया था कि अगर भारत समय रहते सावधान नहीं हुआ, तो उसे इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ेगी। आखिर दुनिया के तमाम महामारी विशेषज्ञों की भारत को लेकर की गई सबसे बदतरीन आशंकाएं और भविष्यवाणियां अंततः सही साबित हुईं! भारत आज दुनिया का सबसे बड़ा कोरोना हॉटस्पॉट है। भारत नए कोरोना मामलों के लिहाज़ से अमेरिका को भी पीछे छोड़कर नंबर एक पर पहुंच गया है। कुल संख्या तो 20 लाख के पार पंहुँच ही चुकी है, देश के गृहमंत्री, दो राज्यों के मुख्यमंत्री, एक राज्यपाल, अनेक मंत्री और नौकरशाह इस समय पॉज़िटिव हैं। उत्तर प्रदेश में एक काबीना मंत्री, बिहार के सीपीआई राज्यसचिव और एक एमएलसी की दुःखद मौत हो चुकी है।

जहां दुनिया के सारे देशों में महामारी उतार पर है, वहीं भारत में इसका कोई आदि अंत ही नहीं दिख रहा, पीक का कुछ पता ही नहीं है! एक अरब तीस करोड़ भारतवासी आज असहाय, मौत और खौफ के साये में जीने को मजबूर हैं। आखिर, यह भयावह स्थिति हमारे देश में ही क्यों आयी, इसके लिए जिम्मेदार कौन है? क्या इसकी जिम्मेदारी जनता जनता पर है?

पर, प्रधानमंत्री और उनके गृहमंत्री ने तो स्वयं देश की जनता की बारंबार तारीफ की है कि अकथनीय यातनाएं सहकर भी जनता ने वह सब किया, जो प्रधानमंत्री ने कहा। ताली-थाली बजाने से लेकर दुनिया के सबसे कठोर और लंबे लॉकडाउन का पालन करने तक। हर देशभक्त, हर देशवासी यह चाहता था कि मोदी जी यह लड़ाई जीतें! क्योंकि राजनेता हारते हैं तो भले कोई दल हारता है, कोई जीतता है, लेकिन प्रधानमंत्री मोदी जब हारते हैं तो यह देश हारता है, इस देश की 130 करोड़ जनता हारती है। पर, अफसोस देश हारता हुआ दिखायी दे रहा है।

आज जब प्रधानमंत्री यह कहते हैं कि, 'सही समय पर लिए गए सही फैसलों के कारण भारत दूसरे देशों की तुलना में कोरोना के खिलाफ लड़ाई में बहुत अच्छी स्थिति में है। हमने कोरोना के खिलाफ लड़ाई को जनान्दोलन में बदल दिया। हमने महामारी से लड़ने के लिए अपने हेल्थ इंफ्रास्ट्रक्चर का तेजी से विस्तार किया है, तो उनके ये शब्द खोखले और कोरी लफ्फाजी लगते हैं।

इस महामारी को फैलने से रोक पाने में विफलता के कारण सरकारी आंकड़ों के हिसाब से जिन 38 हजार से ऊपर देशवासियों की जान चली गयी, उन भाई-बहनों के लिए, उनके परिजनों के लिए ये शब्द कोई सांत्वना के शब्द नहीं, वरन जले पर नमक छिड़कने जैसे लगते हैं।

दूसरे देशों से बार-बार तुलना का संदर्भ अगर हमारी विराट जनसंख्या है, तो चीन की जनसंख्या तो हमसे अधिक है, वहां आबादी के अनुपात में मामले और मौतें हमारी तुलना में बेहद कम क्यों रहीं? उसने कैसे 1 लाख से कम मामलों और 5 हजार से कम मौतों में ही महामारी पर प्रभावी नियंत्रण पा लिया और वुहान से बाहर बीमारी को फैलने ही नहीं दिया?

अगर तुलना का सन्दर्भ हमारी आर्थिक कमजोरी के कारण स्वस्थ्य-व्यवस्था का पिछड़ापन है, तो आज भी वह हमारी सर्वोच्च प्राथमिकता क्यों नहीं बन सका? सरकारों को गिराना, बनाना, जनता के जीवन की कीमत पर येनकेन प्रकारेण चुनाव कराना आदि अभी भी प्राथमिकता क्यों बना हुआ है? मंदिर निर्माण का धार्मिक कार्य धार्मिक लोग करेंगे, वह हमारे राजनैतिक नेतृत्व, प्रशासन की सर्वोच्च प्राथमिकता का कार्यभार क्यों बना हुआ है? महामारी जब देश के अंदर विदेशों से तेजी से प्रवेश कर रही थी, तब समय रहते हवाई अड्डों पर रोक के प्रभावी कदम क्यों नहीं उठाए गए? प्राथमिकता 'नमस्ते ट्रम्प' का आयोजन क्यों बना हुआ था? वह भी उस अमेरिका से जहां, बीमारी तेजी से फैल रही थी? वह भी सैकड़ों का काफिला बुलाकर और लाखों की भीड़ जुटाकर? देश में पहला मामला आने के बाद लगभग 2 महीने इसे फैलने से रोकने के लिए, लॉकडाउन के लिए इंतज़ार क्यों किया गया?

जब लॉकडाउन किया गया, तो वह भी बिना किसी सुचिंतित योजना के, इस तरह कि न सिर्फ करोड़ों प्रवासी अकथनीय यातना के शिकार हुए, वरन बाद में जब भोजन और आजीविका के अभाव में उन्हें घरों को लौटने के लिए मजबूर किया गया, तो भगदड़ मच गई। लॉकडाउन की धज्जियां उड़ती रहीं और वह गाँवों-कस्बों तक फैल गया, जहां स्वास्थ्य सेवाएं पूरी तरह ध्वस्त हैं।

वहां, देश के उन सर्वाधिक पिछड़े इलाकों में वह दिन दूनी रात चौगुनी रफ्तार से बढ़ रहा है और कहर बरपा कर रहा है, जहां किसी यूपी, बिहार, उड़ीसा, बंगाल, असम, आंध्रा वाले को मेदांता, नानावटी, अपोलो और एम्स में इलाज का विशेषाधिकार मिलने वाला नहीं है। क्या 6 महीने का समय इतना कम होता है?

यदि पूरे देश में स्वास्थ्य सेवाओं के विस्तार को सर्वोच्च और एकमेव प्राथमिकता बनायी गयी होती और सारे सरकारी संसाधन, पीएम केयर फंड, अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं से मिली मदद, सबको इसके लिए झोंक दिया गया होता, तो आज हम इतने खौफ़नाक मंजर से रुबरू न हो रहे होते, इतने असहाय न होते! मगर, वह हो न सका क्योंकि आपकी प्रथमिकताएँ कल भी अलग थीं, आज भी अलग हैं। **- हस्तक्षेप**

मंदिर निर्माण का श्रेय इतिहास में किसके नाम दर्ज होगा?

❑ श्रवण गर्ग

चौबीस जुलाई के दिन जब लगभग पांच लाख की आबादी वाले अयोध्या में मंदिर निर्माण के भूमि पूजन की तैयारियों के साथ-साथ शहर की कोई बीस मस्जिदों में मुस्लिम शुक्रवार की नमाज़ पढ़ रहे थे, तब भारतीय जनता पार्टी और पूर्ववर्ती जनसंघ के संस्थापकों में से एक 92-वर्षीय लाल कृष्ण आडवाणी दिल्ली से वीडियो कान्फ्रेंसिंग के ज़रिए लखनऊ की एक सीबीआई अदालत के समक्ष अपने बयान दर्ज करवा रहे थे। राम मंदिर आंदोलन के जनक आडवाणी जब तीस वर्ष पूर्व (25 सितम्बर 1990) मंदिर निर्माण के लिए संघर्ष के रथ पर सवार होकर सोमनाथ से निकले थे, तो किसी ने भी ऐसी कल्पना नहीं की होगी कि आगे चलकर किसी अदालत के समक्ष वे यह कहना चाहेंगे कि बाबरी ढाँचे के विध्वंस की कारवाई में उनकी कोई भागीदारी नहीं थी।

मीडिया में प्रकाशित खबरों के मुताबिक़, आडवाणी से करीब साढ़े चार घंटों तक पूछे गए कोई एक हज़ार से ऊपर सवालों के जवाब का सार यही रहा कि 6 दिसम्बर 1992 को वे अयोध्या में एक कार सेवक की हैसियत से उपस्थित अवश्य थे, पर बाबरी ढांचे को गिराए जाने की कारवाई में उनकी कोई भागीदारी नहीं थी। इस सवाल के जवाब में कि तब उनका नाम भी घटना के आरोपियों की सूची में क्यों शामिल किया गया, उनका जवाब था (केंद्र में तत्कालीन कांग्रेस सरकार द्वारा) 'राजनीतिक कारणों' से। उनके एक दिन पूर्व डॉ.मुरली मनोहर जोशी ने भी अपने बयान में वही कहा था, जो आडवाणी ने कहा। केवल आडवाणी और डॉ जोशी ने ही नहीं, वरिष्ठ भाजपा नेत्री उमा भारती और तत्कालीन मुख्यमंत्री कल्याण सिंह ने भी कथित तौर पर अदालत से यही कहा कि केंद्र सरकार द्वारा राजनीतिक बदले की भावना से उन पर बाबरी के विध्वंस का आरोप मढ़ा गया था।

सवाल यह है कि कोई एक सौ पैंतीस वर्षों की अदालती जद्दोजहद, इतने लम्बे संघर्ष और हज़ारों लोगों के बलिदानों के बाद पाँच अगस्त को अपरान्ह बारह बजकर पंद्रह मिनट पंद्रह सेकण्ड पर उपस्थित हुए उस चिर-प्रतीक्षित क्षण के जब आडवाणी सहित ये तमाम नेता प्रत्यक्ष अथवा वीडियो कांफ्रेंसिंग के ज़रिए साक्षी बने, तब क्या हृदय के अंदर भी वे वैसा ही अनुभव कर रहे थे, जैसा कि कथित तौर पर लखनऊ की सीबीआई अदालत में उनके द्वारा दर्ज कराया गया है, या कुछ भिन्न महसूस कर रहे थे? अगर उन्हें अपनी करतूत पर गर्व है, तो फिर विवादित ढाँचे के विध्वंस में वे अपने भी योगदान का दावा क्यों नहीं करना चाहते? उस अवसर पर रिकार्ड किए गए भाषणों व चित्रों की वीडियो क्लिपिंग्स, प्रकाशित अखबारी रिपोर्ट्स व अन्य दस्तावेज क्या सभी असत्य हैं और राजनीतिक बदले की भावना से तैयार किए गए थे?

देश की जनता के हृदय में इस तरह की सोचमात्र भी कल्पना से परे होगी कि आडवाणी, डॉ जोशी, उमा भारती, कल्याण सिंह या कोई भी अन्य भाजपा नेता या कार्यकर्ता मंदिर निर्माण के कार्य में अपनी भूमिका को स्वीकार करने में पल भर का भी कभी संकोच करेंगे। तब क्या कारण हो सकता है कि आडवाणी और तमाम नेता उस श्रेय को लेने से इनकार कर रहे हैं, जिसके वे पूरी तरह से हक़दार हैं? क्या ऐसा मान लिया जाए कि बाबरी का विध्वंस एक अलग घटना थी और सुप्रीम कोर्ट द्वारा अपने फ़ैसले के ज़रिए मंदिर-निर्माण का मार्ग प्रशस्त किया जाना एक अलग घटना? दोनों के श्रेय के हक़दार भी अलग-अलग हैं? दोनों के बीच सम्बंध है भी और नहीं भी? हो सकता है कि केंद्रीय नेतृत्व बाबरी विध्वंस के साथ एक पार्टी के रूप में भाजपा की किसी भी तरह की संबद्धता नहीं चाहता हो और उसे विश्व हिंदू परिषद आदि संगठनों के मार्गदर्शन में की गई स्वतंत्र कार्रवाई निरूपित करना चाहता हो और इसके ज़रिए देश-दुनिया के मुस्लिमों को भी कोई 'सकारात्मक' संदेश देना चाहता हो। तब क्या देश के वे तमाम नागरिक जो इतने वर्षों से एक निरपेक्ष भाव से अपनी आँखों के सामने सब कुछ घटित होता हुआ देखते रहे हैं, वे भी ऐसा ही स्वीकार करने को तैयार हो जाएँगे ?

भाजपा नेतृत्व की मंशा का सम्बंध क्या इस बात से भी जोड़ा जा सकता है कि आडवाणी द्वारा अपना कथन दर्ज कराने के एक दिन पूर्व केंद्रीय गृहमंत्री अमित शाह और अयोध्या केस के एक प्रसिद्ध अभिभाषक तथा भाजपा सांसद भूपेन्द्र यादव ने कथित तौर पर पूर्व उप-प्रधानमंत्री से भेंट की थी? तब क्या ऐसा मुमकिन है कि आडवाणी की पहली मूल सोच उनके द्वारा सीबीआई अदालत में दर्ज कराए कथन से भिन्न रही हो? ऐसा होने की स्थिति में क्या ऐसा असम्भव होता कि मंदिर निर्माण के लिए भूमि पूजन की पूर्व संध्या पर आडवाणी का किसी भी आशय का 'अन्य कथन' राष्ट्रीय बहस का हिस्सा बन जाता (आश्चर्यजनक रूप से उनके द्वारा सीबीआई अदालत में दर्ज कराए गए कथन पर कोई राष्ट्रीय बहस नहीं हुई) और अयोध्या पर्व पर उपस्थित होने वाले चेहरों की चमक को प्रभावित कर देता? अयोध्या में भगवान राम के मंदिर की स्थापना के अपने प्रयासों के तहत आडवाणी द्वारा बाबरी ढाँचे के विध्वंस में अपनी भूमिका को लेकर दर्ज कराए गए कथन के बाद क्या इस बात पर थोड़ा-बहुत खेद व्यक्त किया जा सकता है कि उम्र के इस पड़ाव पर पहुँचकर भी आडवाणी ने उस संतोष और श्रेय को प्राप्त करने से अपने आप को 'स्वेच्छापूर्वक' वंचित कर लिया, जिसके लिए वे इतने वर्षों से संघर्ष कर रहे थे और शायद प्रतीक्षा भी? मंदिर निर्माण का मार्ग प्रशस्त करने का श्रेय इतिहास में फिर किसके नाम दर्ज किया जाना चाहिए? इस सवाल का आधिकारिक उत्तर क्या अनुत्तरित ही रह जाएगा? ❑

डीएम साहब को अयोध्या का न्योता

काबा किस मुंह से जाओगे ग़ालिब?

❑ अभिषेक श्रीवास्तव

अयोध्या में राम की वापसी हो रही है। यह वापसी सन् नब्बे वाली वापसी नहीं है, जब विश्व हिंदू परिषद ने आंदोलन के ज़ोर पर भूमि पूजन और शिलान्यास करवा दिया था। इस बार शिलान्यास और मंदिर निर्माण का रास्ता सर्वोच्च अदालत से साफ़ हुआ है और मुद्दई रामलला विराजमान की मुकदमे में जीत हुई है। अबकी भगवान, कानून का कवच पहनकर राजनीति की ताकत के साथ समूचे प्रशासनिक अमले की निगहबानी में अयोध्या आ रहे हैं। इस बीच सरयू में इतना पानी बह चुका है कि एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में संविधान की सारी मर्यादाएं तार-तार हो चुकी हैं। राम के भक्तों ने गुज़रे वक्त में न केवल खुद को मर्यादाहीन कर लिया, बल्कि मर्यादा पुरुषोत्तम की आभा भी छीन ली।

इन 28-30 वर्षों में अयोध्या और बाबरी विध्वंस के ऊपर बहुत लिखा गया। ढेरों किताबें आयीं। राजनीति और राजनीतिकों की पोल खुली और विध्वंस का मुकदमा अब तक जारी है। 1950 से लेकर 1984 तक कोई 34 साल राम मंदिर का मुद्दा ठंडे बस्ते में पड़ा रहा क्योंकि न मुकदमे से जुड़े पक्षकारों को कोई चिंता थी और न ही राजनीतिक दलों को। 1950 से पहले चुनावी राजनीति ने अयोध्या को कायदे से पहली बार गरम किया था, जब 22-23 दिसम्बर, 1949 की दरम्यानी रात 'भये प्रकट कृपाला' वाला कांड हुआ। इस कांड के दौरान वहां के जिलाधीश रहे के.के. नैयर त्यागपत्र देने के बाद फैज़ाबाद में ही बस गये और उन्होंने भारतीय जनसंघ के टिकट पर फैजाबाद, गोंडा और बहराइच से अपनी पत्नी, ड्राइवर और चपरासी तक को विधायकी व सांसदी का चुनाव जितवा दिया। यह तथ्य बाबरी विध्वंस के वक्त फैज़ाबाद के एसएसपी रहे डी.बी. राय की लिखी पुस्तक 'अयोध्याः 6 दिसंबर का सत्य' में दर्ज है। राय जब सेवा से निवृत्त हुए, तो वे खुद भी सुल्तानपुर से भारतीय जनता पार्टी के टिकट पर सांसदी का चुनाव लड़े और दो बार जीते।

फैज़ाबाद के यशस्वी अख़बार 'जनमोर्चा' के संस्थापक शीतला सिंह से ज्यादा प्रामाणिक कोई व्यक्ति फिलहाल इस दुनिया में जीवित नहीं है, जो सात दशक की इस लंबी कहानी का प्रत्यक्ष गवाह और किरदार रहा हो। ठीक दो साल पहले 'अयोध्या का सच' नाम से लिखी अपनी पुस्तक में 1949 और उसके बाद 1989 से 1992 के दरम्यानी वर्षों में अयोध्या के प्रशासन में शामिल अहम किरदारों की भूमिका पर उन्होंने कुछ प्रसंग शामिल किये हैं। इन प्रसंगों को पढ़ते हुए ऐसा लगता है कि जब-जब राजनीति ने अपने फायदे के लिए धर्म में हस्तक्षेप किया है, तब-तब प्रशासनिक अधिकारियों ने तत्कालीन राजनीति के साथ खुद को नत्थी करके अपना भविष्य सुरक्षित किया है। आज़ाद भारत में नौकरशाही के इतिहास पर पता नहीं कोई काम हुआ है या नहीं, लेकिन आज़ादी के ठीक बाद गरमायी अयोध्या के प्रशासनिक मुखिया का राजनेता और जनप्रतिनिधि बन जाना इस बात की ताकीद करता है कि संभवतः ब्यूरोक्रेसी के राजनीतिकरण के शुरुआती अध्यायों में यह घटना रही होगी। काफी बाद में नैयर की पत्नी चौधरी चरण सिंह की संविद सरकार में मंत्री भी रही थीं।

नैयर और राय की तरह बाबरी विध्वंस के समय फैजाबाद के डीएम रहे रामशरण श्रीवास्तव ने राजनीति की राह तो नहीं पकड़ी, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप से वे भारतीय जनता पार्टी के लाभार्थी ही रहे क्योंकि सेवानिवृत्ति के बाद भारतीय जनता पार्टी ने उन्हें भारत सेवक समाज की प्रदेश शाखा का अध्यक्ष बना दिया। ऐसा नहीं है कि संविधान की कसम खाये इन प्रशासनिक अधिकारियों ने अपनी धार्मिक या राजनीतिक आस्था नौकरी से रिटायर होने के बाद जाहिर करके राजनैतिक दल का दिया प्रसाद ग्रहण किया। इन्होंने नौकरी में रहते हुए ही राजनीतिक दलों के घोषित एजेंट के रूप में काम किया, न कि जनता के 'माई-बाप' के रूप में (जो प्रशासनिक अधिकारियों को प्रशिक्षण में सिखाया जाता है)।

शीतला सिंह लिखते हैं कि 1990 में हुए शिलान्यास का रास्ता कानूनी रूप से श्रीवास्तव ने ही साफ़ किया था। राजनीतिक दल अपने वफादार कारकूनों को कभी नहीं भूलते। ख़बर के मुताबिक श्रीवास्तव को 5 अगस्त के समारोह के लिए बुलावा आया था। इस घटना में देखिए, किस तरह वक्त के साथ शब्दों के मायने बदल जाते हैं। एक कृत्य जो आज से 28-30 साल पहले असंवैधानिक अपराध था, वह कैसे आज पूरी बेशर्मी से राजकीय गौरव और सामाजिक प्रतिष्ठा का बायस बन गया है। नैयर, राय और श्रीवास्तव सत्तर साल के भारतीय लोकतंत्र की निराशाजनक पटकथा के वे किरदार हैं, जो राजनीतिक सत्ता के समक्ष अपनी निजी व पेशेवर निष्ठा और मर्यादा को अगर बनाये रखते, तो बहुत संभव है कि उनके सामाजिक और परिवारी दायरे में आने वाले लोगों के जीवन-मूल्य कुछ और होते। ये जीवन-मूल्य इस देश के संवैधानिक मूल्यों के साथ जुड़कर समाज को और मजबूत बनाते। किन्तु ऐसा नहीं हुआ। लोकतंत्र अपनी भ्रूण अवस्था में ही बूढ़ा, बौना और विकलांग हो गया। कुआं खुदते ही उसमें भांग पड़ गयी। पानी बाद में भरा। नतीजा? आज सत्तर साल बाद, संवैधानिक रूप से धर्मनिरपेक्ष इस देश में, जनता के बहुमत से चुना गया प्रधानसेवक, न्यायपालिका के शीर्ष से अनुमोदित बहुसंख्यकों के एक धार्मिक आयोजन में, राजकीय अतिथि बनकर पहुंचा। जनता ने खूब ताली बजायी है क्योंकि उसके ओपिनियन लीडर्स, उसकी चेतना के रखवाले डीएम साहबों ने खुद अपने उदाहरण से दिखाया है कि यही सही है। काश! निम्न मध्यवर्गीय व गरीब परिवारों से निकलने वाले गुदड़ी के ये लाल अगर आज भी सोच लेते कि उन्होंने पहले पहल प्रशासनिक अधिकारी बनना क्यों चुना था और अपने आचरण व उदाहरण से उन्होंने अपने इर्द-गिर्द कैसा समाज बना दिया है जो ज़हर को दवा समझ के निगले जा रहा है, तो एक बार को इनकी गरदन जरूर झुक जाती। आंख में शर्म का पानी उतर आता है और ये खुद से पूछते, 'काबा किस मुंह से जाओगे, ग़ालिब?'

-जन ज्वार

क्या राम मंदिर की आड़ में अपनी विफलताएं छिपा रही है सरकार?

❑ सुभाष गाताडे

बीते दिनों उद्धव ठाकरे द्वारा अयोध्या में राम मंदिर के प्रस्तावित भूमि पूजन को लेकर जो सुझाव दिया गया था, वह गौरतलब है. उन्होंने इस बात पर जोर दिया था कि 'ई-भूमि पूजन किया जा सकता है और भूमि पूजन समारोह को वीडियो कॉन्फ्रेंसिंग के जरिये भी अंजाम दिया जा सकता है. कोरोना महामारी को लेकर देश और दुनिया भर में जो संघर्ष अभी जारी है और धार्मिक आयोजनों पर पाबंदियां लगी हुई हैं, ऐसे में उनकी बात गौरतलब है.

ताजा आंकड़े बताते हैं कि भारत कोरोना संक्रमितों की संख्या के मामले में फिलवक्त दुनिया के तीन अव्वल देशों में शुमार है- संयुक्त राज्य अमेरिका, ब्राजील और भारत. संक्रमण के फैलाव के डर से समूची दुनिया के सभी अग्रणी धर्मों ने अपने अहम धार्मिक आयोजनों को मुल्तवी कर दिया है.हमें नहीं भूलना चाहिए कि चंद रोज पहले ही सऊदी अरब हुकूमत की तरफ से कहा गया है कि इस साल हज यात्रा के लिए देश के महज 1,000 लोगों को ही इजाजत मिलेगी. इस यात्रा में हर साल देश दुनिया से 25 लाख लोग शामिल होते हैं और उसके बरक्स इस साल महज 1,000 लोग, वह भी सउदी अरब के अपने निवासी ही शामिल होंगे. भारत में भी अमरनाथ यात्रा को इस साल के लिए टाल दिया गया है. महाराष्ट्र में मशहूर पंढरपुर वारी, जिसमें हर साल लाखों लोग पुणे से पंढरपुर पैदल यात्रा करते हैं तथा पंढरपुर के विठोबा मंदिर में दर्शन करते हैं, उसे भी टाल दिया गया है. यह पूरी जो बहस चल रही है, उसमें कुछ अन्य अहम बातें निकलकर सामने आ रही हैं. एक, क्या मौजूदा हुकूमत के लिए, जिसके मुखिया ने आपदा में अवसर की बात बुलंदी के साथ कही थी, यह आयोजन अपनी नाकामियों से बच निकलने का एक और जरिया तो नहीं बना? कोविड संक्रमण के फैलाव में भारत के दुनिया के तीन अग्रणी देशों में शामिल होने को लेकर सरकार पर सवाल उठ रहे हैं. अर्थव्यवस्था की गिरती हालत और साथ ही साथ चीन की गलवान घाटी में कथित घुसपैठ तथा अन्य स्थानों पर वैसी ही कोशिशें, जिन्हें लेकर सरकार के अंदर से ही उठे विरोधाभासी स्वरों ने भी मोदी सरकार की अच्छी किरकिरी की है.अब इस मामले में नार्दर्न आर्मी कमांडर लेफ्टिनेंट जनरल वाईके जोशी का हालिया बयान भी सरकार की असुविधा बढ़ाने के लिए काफी है, जिसमें उन्होंने कहा है कि सेना लाइन ऑफ एक्चुअल कंट्रोल पर यथास्थिति बहाल करने की कोशिश करेगी, जबकि हकीकत यही है कि आज तक मोदी ने चीनी घुसपैठ की बात को स्वीकारा नहीं है। यह पहली दफा है कि किसी फौजी कमांडर ने आधिकारिक तौर पर ऐसी बात कही है, जिसके मायने यही निकलते हैं कि चीन ने भारतीय क्षेत्र पर कब्जा कायम किया है. यूं तो ट्विटर पर कोई बात बहुत ट्रेंड हो, तो भी उसके विशेष मायने नहीं होते, क्योंकि सरकार ने अपने अंकुश से इसकी निष्पक्ष धार को कुंद करने की बहुत कोशिश की है, मगर पिछले दिनों उस पर उठा एक तूफान कम से कम प्रबुद्ध या मुखर तबके के अच्छे-खासे हिस्से में मोदी और उनकी हुकूमत को लेकर छा रही निराशा को ही अभिव्यक्त कर रहा था.यह ट्रेंड 'नॉनसेंस मोदी' नाम से चला. अग्रणी अख़बार द टेलीग्राफ ने लिखा कि 'एक ऐसा प्रधानमंत्री, जो उसके हिमायतियों, प्रशंसकों और मीडिया के एक बड़े हिस्से के मुताबिक कुछ भी गलत नहीं कर सकता है, उसकी इस किस्म की जबरदस्त सार्वजनिक आलोचना महज बकवास नहीं कही जा सकती. वह बिल्कुल सोच समझकर रखी गई बात दिखती है.अख़बार ने यह भी जोड़ा कि 'यह मानने के तमाम कारण हैं कि शासन के तमाम मोर्चों पर नरेंद्र मोदी की विफलताओं ने ही उन्हें यह विशेषण हासिल करवाए हैं. अर्थव्यवस्था, जो महामारी से ही नहीं, बल्कि एक अक्षम सरकार के संचालन से भी प्रभावित है, वह छिन्न-भिन्न हो रही है, देश का सामाजिक तानाबाना भी तितर-बितर हो चुका है, हमारी सरहद अचानक छिद्रपूर्ण दिख रही है, किसान, प्रवासी मजदूर, गरीब और अल्पसंख्यक बेहद मुश्किल में हैं. वही हाल संस्थाओं का है, जो अधिनायकवादी हस्तक्षेप से दम तोड़ रही हैं, विदेश नीति दिशाहीन लग रही है.'यह शायद पहली दफा हो रहा है कि मुख्यधारा की पत्रिकाओं और वेब जर्नल्स में मोदी का जादू किस तरह चुक रहा है, अब इसकी चर्चा चल पड़ी है.

रिजर्व बैंक के पूर्व गवर्नर उर्जित पटेल, जिन्हें रघुराम राजन के स्थान पर इस पद पर लाया गया था और जिन्होंने अपना कार्यकाल पूरा करने के पहले ही इस्तीफा दे दिया, जबकि वह सरकार के करीबी समझे जाते थे, मौजूदा सरकार के बेहद करीबी समझे जाने वाले एक कॉरपोरेट घराने से उनके पारिवारिक रिश्ते की बात होती थी, उनकी नई किताब 'ओवरड्राफ्ट-सेविंग द इंडियन सेवर' का प्रकाशन भी निश्चित तौर पर सरकार के लिए अच्छी ख़बर लेकर नहीं आया है.इसमें उन्होंने बताया है कि 'तत्कालीन वित्त मंत्री के साथ उनका मतभेद दिवालिया मामलों को लेकर सरकार के फैसलों से शुरू हुआ, जिनमें काफी नरमी थी.'किताब में वह किसी का नाम नहीं लेते हैं, लेकिन जिस दौर की वह बात कर रहे हैं, उसमें पीयूष गोयल को कुछ माह के लिए वित्त मंत्रालय का जिम्मा दिया गया था.पटेल ने अपनी किताब में लिखा है कि 2018 के मध्य में दिवालिया मामलों के लिए नरमी वाले फैसले लिए गए, जब अधिकतर कामों के लिए वित्त मंत्री और उर्जित पटेल मामलों से जुड़ी बातों को लेकर एक ही लेवल पर थे. 2018 में पीयूष गोयल ने मीडिया से बात करते हुए सर्कुलर में नरमी लाने की बात कही और बोले कि किसी भी लोन को 90 दिनों के बाद एनपीए नहीं कहा जा सकता.

दिलचस्प बात है कि रिजर्व बैंक के पूर्व

डिप्टी गवर्नर विरल आचार्य की नई किताब 'क्वेस्ट फॉर रिस्टोरिंग फाइनेंशियल स्टेबिलिटी इन इंडिया', जो उनके उन व्याख्यानों, रिसर्च पेपर्स आदि का संकलन है, जब वह रिजर्व बैंक की मॉनेटरी पॉलिसी कमेटी के सदस्य भी थे, लगभग इसी बात की ताईद करती है कि किस तरह रिजर्व बैंक की स्वायत्तता को कमजोर करने की सरकारी कोशिशों के चलते ही उर्जित पटेल को अपना पद छोड़ना पड़ा.एक तरफ बैड लोन को लेकर शोरगुल और दूसरी तरफ इसकी वसूली के लिए प्रतिबद्ध कहे जा सकने वाले रिजर्व बैंक के नियमों को मनमाने ढंग से बदलना, यह रुख यही बताता है कि सरकार किस तरह दरबारी पूंजीपतियों की सेवा में लगी है. अब जब हम राम मंदिर के भूमि पूजन में प्रधानमंत्री की सहभागिता की बात करें, तो यह समूची पृष्ठभूमि हमारे सामने मौजूद होनी चाहिए. याद रहे, यही वह दिन है, जब पिछले साल भाजपा सरकार ने एक झटके में जम्मू कश्मीर के स्वरूप को बदल दिया था. धारा 370 समाप्त कर दी गई थी और संघीय गणराज्य के एक सूबे को संसद के एक प्रस्ताव से दो केंद्रशासित प्रदेशों में बांट दिया था. लाजिम है कि यह मानने के पर्याप्त आधार हैं कि राम मंदिर के भूमि पूजन के लिए चुना गया यह समय एक तरह से छोटी रेखा के बगल में बड़ी रेखा खींचने की कवायद थी, ताकि मोदी और उनकी सरकार की बढ़ती असफलताएं- कोविड प्रबंधन, अर्थव्यवस्था, क्रोनी पूंजीपतियों को उसके द्वारा दी गई छूट और गलवान घाटी प्रसंग- की तमाम बातें नेपथ्य में चली जाएं. प्रश्न उठता है कि क्या समूचा राजनीतिक विपक्ष, सामाजिक आंदोलन या असहमति रखने वाला बुद्धिजीवी तबका भी इसी बड़ी रेखा के दबाव में मौन हो जाएगा या तुच्छ राजनीति में टिके रहने की निश्चितता के बरक्स अनिश्चितता के साहस को केंद्र में रखते हुए उसके सामने खड़ी जिंदगी की नई चुनौतियों की नयी संकल्पना गढ़ेगा? यह बोलने का समय है। अगर इस गाढ़े वक्त में समाज का जिम्मेदार तबका देश के प्रति अपनी इन जिम्मेदारियों से चूक गया, तो लोकतंत्र और आजादी के सामने खड़े खतरे बढ़ते ही जायेंगे। **- द वायर**

प्रेमचंद, सुल्ताना डाकू और नई शिक्षा नीति

❑ वी एन राय

140 वर्ष पूर्व पैदा हुए प्रेमचंद के लेखन और अब घोषित शिक्षा नीति में क्या कोई संगत सम्बन्ध हो सकता है? प्रेमचंद 'हंस' के अप्रैल 1930 के अंक में लिखे अपने लेख 'बच्चों को स्वाधीन बनाओ' में कहते हैं, 'बालक को प्रधानतः ऐसी शिक्षा देनी चाहिए कि वह जीवन में अपनी रक्षा आप कर सके।' इस कसौटी पर देखें तो आज नए सिरे से घोषित देश की शिक्षा नीति भी वर्तमान सरकार के जुमलों का ही एक और पुलिंदा सिद्ध नहीं होगी, कहा नहीं जा सकता। हालांकि नीति को अंतिम रूप देने वाली विशेषज्ञ समिति के प्रमुख, इसरो के पूर्व चेयरमैन कस्तूरीरंगन ने दावा किया कि इसमें स्कूल की आरंभिक कक्षाओं से ही व्यावसायिक शिक्षा और कौशल विकास पर जोर दिया गया है। कक्षा छह से ही छात्रों को रोजगारपरक शिक्षा उपलब्ध कराने की कोशिश की गयी है।

इस सन्दर्भ में 90 वर्ष पूर्व के उपरोक्त लेख में प्रेमचंद को देखिये, 'बच्चों में स्वाधीनता के भाव पैदा करने के लिए यह आवश्यक है कि जितनी जल्दी हो सके, उन्हें कुछ काम करने का अवसर दिया जाये।' आज के नियामकों ने अगर प्रेमचंद को पढ़ा होता तो वे जानते कि प्रेमचंद ने बच्चों को आत्म-संयम और विवेक के औजारों से मजबूत बनाने पर जोर दिया, न कि जैसा कस्तूरीरंगन ने बताया कि शिक्षा का अंतिम उद्देश्य आखिर रोजगार हासिल करना होता है। 1907 में देशप्रेम की जोशीली और अपरिपक्व कहानियों के संग्रह 'सोज़े वतन' की सरकारी जब्ती के धक्के से उबरने के बाद प्रेमचंद ने सूक्ष्मता को अपनी शैली में शामिल कर लिया। उपरोक्त लेख का शीर्षक और रवानी बेशक बच्चों को घरों में स्वाधीन वातावरण में विकसित होने और बड़ों की आज्ञाएं लादने से बचाने पर केन्द्रित है, पर इसमें अनुगूंज है गांधी के नागरिक अवज्ञा आन्दोलन की। लेख से ये उद्धरण देखिये-

बालक के जीवन का उद्देश्य कार्य-क्षेत्र में आना है, केवल आज्ञा मानना नहीं।/आज किसी बाहरी सत्ता की आज्ञाओं को मानने की शिक्षा देना बालकों की अनेक बड़ी जरूरतों की तरफ से आँखें बंद कर लेना है।/आज जो परिस्थिति है, उसमें अदब और नम्रता का इतना महत्त्व नहीं, जितना स्वाधीनता का है।/सम्पन्न घरों के विलास में पले हुए युवक हैं, जो स्वार्थ के लिए भाइयों का अहित करते हैं, सरकार की बेजा खुशामद करते हैं।

खांटी गांधी प्रशंसक बनने से बहुत पहले, लेखन के शुरुआती दिनों में, प्रेमचंद ने नर्म गोखले की तुलना में उग्र तिलक को सही ठहराते हुए बचकानी शैली में निबंध लिखा था। 'स्वराज हमारा जन्मसिद्ध अधिकार है' का नारा देने वाले तिलक जैसे नायक के प्रति एक किशोर युवा का यह स्वाभाविक आकर्षण रहा होगा। लेकिन 46 वर्ष की उम्र में मंझे हुए कहानीकार प्रेमचंद ने 'कजाकी' शीर्षक कहानी में सुल्ताना डाकू तक को आलोकित कर दिया। आज भी लोककथाओं में गरीबों के मसीहा के रूप में जीवित सुल्ताना डाकू को 1924 में हल्द्वानी जेल में फांसी दी गयी थी। एक रात पहले उसने खुद को पकड़ने वाले कर्नल सैमुअल पीयर्स को अपनी जीवन कथा सुनायी थी। सुल्ताना की तरह उम्र के बीसे में चल रहा और उसी की कद-काठी और शक्ल-सूरत वाला डाकिया कजाकी छह वर्ष के बालक को कंधे पर बिठाकर जो कहानियां सुनाता है, उनमें उसे उन डकैतों की कहानियाँ अच्छी लगती हैं, जो रईसों की लूट को गरीबों में बाँट देते हैं। बेशक, कहानी में सुल्ताना के प्रति प्रेमचंद के आकर्षण को ढूँढ़ना पड़ता है। हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि गांधी के अनन्य भक्त प्रेमचंद ने अपनी कई कहानियों में सूक्ष्मता से भगत सिंह और उनके साथियों को भी, बिना उनका संदर्भ वृत्तांत में लाये, गौरवान्वित किया है। यहाँ तक कि 'गोरे अंग्रेज के स्थान पर काले अंग्रेज' वाली मशहूर उक्ति तक को भी। आज भी डर व्यक्त किया जा रहा है कि नयी शिक्षा नीति, प्रभुत्व के इसी आर्थिक-सामाजिक-राजनीतिक समीकरण को और स्थायी न कर दे। ❑

नयी शिक्षा नीति का उद्देश्य क्या है?

❑ विजय शंकर सिंह

मैकाले की शिक्षा नीति 1835 में लागू हुई थी। उसके पहले कोई घोषित सरकारी शिक्षा नीति नहीं थी। मंदिरों के साथ गुरुकुल थे और मस्जिदों के साथ मकतब और मदरसे। भाषा संस्कृत थी और फ़ारसी। फ़ारसी राजकाज की भाषा थी तो उसकी तरफ सबका रुझान बना रहा। अंग्रेजी राज में राजकाज की भाषा बदल कर अंग्रेजी हो गयी तो लोग उधर की ओर बढ़े। अंग्रेजी की ओर बढ़ना भाषा की ओर बढ़ने की ललक नहीं थी, बल्कि रोजगार पाने की ललक थी। कल्पना कीजिए कि अगर ब्रिटेन और फ्रांस के आपसी संघर्ष में अगर फ्रांस, ब्रिटेन पर भारी पड़ जाता तो भारत इंग्लैंड के बजाय फ्रांस का उपनिवेश बन जाता। ऐसी हालत में अंग्रेजी के बजाय फ्रेंच देश की मुख्य संपर्क भाषा हो सकती थी। आज भी चन्दननगर और पुदुचेरी में फ्रेंच कुछ हद तक चलती है। इस प्रकार अंग्रेजी रोजगारोन्मुख होने के कारण, मुख्य भाषा के रूप में तेजी से प्रतिष्ठित होने लगी। लेकिन लॉर्ड मैकाले की शिक्षा नीति के लागू होने के पचास साल के भीतर ही, ग्रेजुएट डिग्रीधारी भी बेरोजगारी से रूबरू होने लगे थे। डेढ़ सौ साल पहले लिखी गयी भारतेंदु हरिश्चंद्र की यह मुकरी देखें -

तीन बुलाए तेरह आवैं, निज निज बिपता रोइ सुनावैं।

आँखौं फूटे भरा न पेट, क्यों सखि साजन? नहिं ग्रैजुएट।

कहने का आशय यह है कि श्रम और व्यायसायिक शिक्षा से दूर 'ग्रेजुएट बनाओ' शिक्षा, जिसे मैकाले ने बाबू बनाने के लिये लागू किया था, की विफलता के संकेत तभी मिलने लगे थे।

भारतेंदु के बाद प्रेमचंद जी की एक प्रसिद्ध कहानी, बड़े भाई साहब का यह उद्धरण पढ़ लीजिए। यह उद्धरण भी शिक्षा के उद्देश्य और उसकी गुणवत्ता पर एक रोचक और बेबाक बयान है।

'इंगलिस्तान का इतिहास पढ़ना पड़ेगा! बादशाहों के नाम याद रखना आसान नहीं है। आठ-आठ हेनरी हो गुजरे हैं, कौन-सा कांड किस हेनरी के समय हुआ, क्या यह याद कर लेना आसान समझते हो? हेनरी सातवें की जगह हेनरी आठवां लिखा और सब नम्बर गायब! सफाचट! सिफर भी न मिलेगा, सिफर भी! हो किस ख्याल में? दर्जनों तो जेम्स हुए हैं, दर्जनों विलियम और कोड़ियों चार्ल्स, दिमाग चक्कर खाने लगता है। आंधी रोग हो जाता है। इन अभागों को नाम भी न जुडते थे। एक ही नाम के पीछे दोयम, तेयम, चहारम, पंचम लगाते चले गए। मुछसे पूछते, तो दस लाख नाम बता देता।

जेमेट्री तो बस खुदा की पनाह! अ ब ज की जगह अ ज ब लिख दिया और सारे नम्बर कट गए। कोई इन निर्दयी मुमतहिनों से नहीं पूछता कि आखिर अ ब ज और अ ज ब में क्या फर्क है और व्यर्थ की बात के लिए क्यों छात्रों का खून करते हो? दाल-भात-रोटी खायी या भात-दाल-रोटी खायी, इसमें क्या रखा है? मगर इन परीक्षकों को क्या परवाह! वह तो वही देखते हैं, जो पुस्तक में लिखा है। चाहते हैं कि लड़के अक्षर-अक्षर रट डालें। और इसी रटंत का नाम शिक्षा रख छोड़ा है। आखिर इन बे-सिर-पैर की बातों के पढ़ने से क्या फायदा?

इस रेखा पर वह लम्ब गिरा दो, तो आधार लम्ब से दुगना होगा। पूछिए, इससे प्रयोजन? दुगना नही, चौगुना हो जाए, या आधा ही रहे, मेरी बला से, लेकिन परीक्षा में पास होना है, तो यह सब खुराफात याद करनी पड़ेगी।'

भारतेंदु हरिश्चंद्र और प्रेमचंद के बीच भी सत्तर सालों का अंतर है। पर दोनों की व्यथा एक ही है। समानता का भाव बच्चों में बचपन से ही उत्पन्न हो, यह बहुत ज़रूरी है। इसीलिए प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा में समानता और एकरूपता होनी चाहिए। पढ़ाई लिखाई का उद्देश्य नौकरी या रोजगार तो है ही, क्योंकि कितनी भी विद्वता हो या ज्ञान सिंधु उमड़ रहा हो, अगर वह शिक्षा दीक्षा उदर और परिवार पालन में सहायक नहीं हो पा रही है, तो उसका कोई अर्थ नहीं है। इसलिए व्यावसायिक शिक्षा को प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। इस शिक्षा नीति में भी यह बात सम्मिलित है।

भाषा का जहां तक सम्बंध है, इतिहास में वही भाषा जीवंत और दीर्घजीवी बनी रहती है, जो रोजगार से जुड़ी होती है। भारत में सदैव सरकारी भाषा और जनभाषा अलग-अलग रही हैं। जब संस्कृत सरकारी कामकाज की भाषा थी तो, प्राकृत, पाली, अवहट्ट और विभिन्न बोलियां सम्प्रेषण के माध्यम के रूप में, जन भाषा बनी रहीं। जब मध्यकाल में फ़ारसी भाषा, सरकार और उच्च वर्ग की भाषा बन गयी तो ब्रज, अवधी, मैथिली, हिंदवी आदि भाषाएं या बोलियां हीतब भी जन भाषा बनी रहीं। अब जब अंग्रेजी सरकारी भाषा बन गयी है, तो जन भाषाएं खत्म नहीं हुईं, बल्कि रोजगारपरक न होने से दोयम दर्जे के रूप में ही सही, पर अब भी बनी हुई हैं। अंग्रेजी, सरकारी और एलीट क्लास की भाषा के रूप में अब भी मजबूती से स्थापित है।

यह भाषाई असमानता अगर नयी शिक्षा नीति में दूर नहीं की गई है, तो उसे दूर किया जाना चाहिए। शिक्षा का अधिकार तो ज़रूरी है ही, पर समान शिक्षा का अधिकार इससे भी अधिक ज़रूरी है। अगर शुरुआती शिक्षा में एकरूपता नहीं लायी गयी तो समाज बचपन से ही शिक्षा के आधार पर दो भागों में बंट जाएगा, जो सामाजिक विषमता के साथ साथ आर्थिक असमानता को भी बढ़ाएगा।

वही शिक्षा बेहतर है जो, सामाजिक समानता लाये, आर्थिक रूप से स्वावलंबी बनाये और ज्ञान विज्ञान के तमाम अवसर उपलब्ध कराए। लोगों के बीच परस्पर संवेदना का भाव बढ़े, जीवन के बुनियादी मूल्यों की स्थापना हो और बुनियादी सुविधाओं का अकाल न हो। शिक्षा का उद्देश्य होना चाहिए कि वह भविष्य के लिए बेहतर नागरिक का निर्माण करे। नयी शिक्षा नीति इन सब उद्देश्यों में कितना सफल होगी यह तो भविष्य ही बताएगा। ❑

शख्सियत

पंडित मुंशी रहमान ख़ाँ रामायणी

(गंगोजमुनी तहज़ीब की जिन्दा मिसाल 'जीवन प्रकाश' के रचयिता)

❑ अजय शुक्ल

दस्तक हुई तो दरवाज़ा खोला। सामने एक बुज़ुर्गवार खड़े थे। बेहद बूढ़े। उनकी खसख़सी दाढ़ी और कपड़े-लत्तों से मैं इतना ही जान पाया कि वे मुसलमान हैं। मैं चौखट से हटा नहीं। कोरोना काल में एक अपरिचित का स्वागत करने के लिए मेरा मन तैयार नहीं हो पा रहा था।

'जी। बताएं..' मैंने नज़रों से ज़मीन कुरेदते हुए कहा।

'राम-राम बेटा' उन्होंने जवाब दिया।

मैंने उनकी तरफ देखा। बुजुर्गवार के चेहरे पर मुस्कान खेल रही थी।

'जी, अंकल' मैं अब भी बूढ़े को भीतर आने की दावत नहीं दे पा रहा था, मैंने आपको पहचाना नहीं!'

'मैं रामभक्त..पंडित..मुंशी रहमान ख़ाँ, रामायणी, निवासी...' उन्हें खांसी आ गई। बात पूरी नहीं कर पाए। सांस थमी तो बोले, 'थोड़ा-सा पानी मिल जाएगा क्या?'

मेरे पास डिस्पोज़ेबल बरतन थे। 'आइए, अंदर आ जाइए खान साहब' मेरी इंसानियत जागने लगी थी। बूढ़े को सोफे पर बिठाकर मैं प्लास्टिक के गिलास में पानी ले आया। गिलास को हाथ में पकड़ कर बूढ़ा फिर मुस्कराया और बोला, 'अब मिट्टी के बरतन नहीं बनते क्या?'

'अंकल, बनते तो हैं, मगर बस पूजा-पाठ के लिए...भगवान के लिए' मैंने जवाब दिया और सवाल भी दाग दिया, 'बताइए, क्या ख़िदमत करूँ...? कैसे आना हुआ...? मैं तो आपको पहचान भी नहीं पा रहा...'

'कोई सेवा नहीं चाहिए बेटा। तुम्हारा पुरखा हूं। पुरखों को जल देते हैं न? तुमने पानी दे दिया..समझ लो तुमने तर्पण कर दिया। मैं तृप्त हुआ...।'

इतना कहकर बूढ़ा उठने लगा। उसने मुझे देखा। आंखों में प्रेम और करुणा का सागर लहरा रहा था। उसकी चितवन ने सहसा मुझे सम्मोहित कर दिया। एक अबूझ-सी चमक थी उसकी बूढ़ी आंखों में। मैं खुद को सुन्न पा रहा था।

'बाबा, रुकिए तो, कुछ और बताइए अपने बारे में' मैंने कहा और उसकी जर्जर कलाई थाम ली। कलाई ठंडी थी।

'बताया तो, मेरा नाम रहमान ख़ाँ है।' बूढ़ा वापस सोफे पर बैठ गया। बोला, 'सूरीनाम जानते हो? त्रिनिदाद, टोबैगो के पास एक

छोटा-सा देश सूरीनाम। अरे, वही वेस्टइंडीज वाला इलाक़ा। वहीं है मेरा घर। वैसे पुश्तैनी घर गांव भरखरी, थाना बिंवार, ज़िला हमीरपुर, उत्तर प्रदेश में है।'

'अभी कहां से आना हो रहा है बाबा और..।' मैं बात पूरी करता, उससे पहले वह जवाब देने लगा, 'कहां से आ रहा हूं, यह बेमानी बात है। बड़ी बात यह है कि कहां जा रहा हूं। मैं अजुध्या जी जा रहा हूं।

'और वह सूरीनाम का क्या चक्कर है?' मेरी उत्सुकता बढ़ती जा रही थी।

'सूरीनाम?' बूढ़े को भी बातचीत में मज़ा आने लगा था, 'सूरीनाम मेरी कर्मभूमि है। गिरमिटिया मज़दूर बनकर गया था वहां। गोरों के गन्ने के खेतों पर काम करता था। बड़े कष्ट का जीवन था। काम खत्म करने के बाद शाम को सभी मज़दूरों के बीच मैं तुलसी बाबा की रामायण का पाठ करता था। कभी मन करता तो महाभारत और सुखसागर के किस्से भी सुनाता था। सब मुझे पंडित जी कहते थे। हिंदुस्तान में मैं मुंशी जी यानी टीचर था। वहां पंडित जी बन गया।'

मैं सन्नाटा खींच कर सुने जा रहा था। धुकधुकी बढ़ती जा रही थी। बुड्ढा गिरमिटिया था, यह जानने के बाद दिमाग़ उसकी उम्र का अंदाज़ लगाने में जुटा पड़ा था, लेकिन ख़ौफ़ मुझ पर इस क़दर तारीं था कि हिसाब नहीं कर पा रहा था।

मुझे अपने अंदर से 'जय हनुमान ज्ञान गुन सागर' के बोल सुनाई दे रहे थे। उन्हीं स्वरों से ताक़त इकट्ठी करके मैंने बूढ़े से पूछा, 'बाबा आप हैं कौन?'

'भूत...' बुड्ढे ने कहा और ठहाका मार कर हंसने लगा। कुछ पल रुकने के बाद उसने कहा, 'मैं हिंदुस्तान हूं–बीता हुआ। तो भूत ही तो हुआ। वह हिंदुस्तान, जिसमें पांच वक्त का नमाज़ी रामायणी भी होता था!'

भूत शब्द सुनने के बाद मैं भय से कांपने लगा। तो भी 'महावीर जब नाम सुनावैं' कहते हुए मैंने एक बार फिर हिम्मत जुटाकर पूछ डाला, 'बाबा, आप कब पैदा हुए थे?'

'बताऊंगा, बताऊंगा' बूढ़ा बोला, 'लेकिन पहले एक गिलास पानी और।'

मैं दौड़ कर पानी ले आया। बूढ़े ने एक घूंट पानी पिया और बोला, 'तो सुनो, मैं गांधी बाबा से पांच साल छोटा हूं और पंडित जी से पंद्रह साल बड़ा।'

इतना कह कर बूढ़े ने बचा हुआ पानी मेरे सर पर डाल दिया। मैंने सिर झटक कर आंख खोली तो बूढ़ा गायब था। उसकी जगह पत्नी का चेहरा अपने ऊपर झुका दिखा। उनके हाथ में पानी से भरा लोटा था। वे झल्ला रही थीं, 'अब उठो भी, नौ बज़ रहे हैं। आज सावन का सोमवार है। जाओ, शिव जी का जलाभिषेक कर आओ।'

नहाने-धोने के बाद मैं जलपात्र लेकर मंदिर चला गया। मंदिर में जलाभिषेक, पंचाक्षर मन्त्र जाप, रुद्राष्टक और शिव तांडव स्तोत्र का पाठ तो मैं करता रहा, लेकिन दिमाग़ के एक कोने में मुंशी रहमान ख़ाँ का सपना भी चलता रहा। सो, घर आते ही फलाहार के तुरंत बाद मैंने गूगल से रहमान ख़ाँ के बारे में पूछताछ की तो मुझे गिरमिटियों का रामायणी मिल गया। पहले लेख में ही उन बातों की तस्दीक़ हो गई, जो सपने वाले बूढ़े ने मुझे बताई थी।

मुंशी रहमान ख़ाँ, वल्द मोहम्मद ख़ाँ, साकिन मौजा भरखरी, थाना बिंवार, ज़िला हमीरपुर, कमिश्नरी इलाहाबाद, उत्तर प्रदेश। पैदाइश सन् 1874, इंतकाल सन् 1972, स्थान पारामारिबो, सूरीनाम।

तो सपने में आया बूढ़ा वाक़ई भूत था! मर चुका था! मगर यह भूत मेरे सपने में कैसे घुस आया? मेरे रेशनलिस्ट मन के लिए यह बहुत बड़ा सवाल था, क्योंकि सपने निराधार नहीं होते। मैंने गूगलिंग जारी रखी, मुझे मुंशी जी की कुछ और बातें मालूम हुईं। इनमें से एक थी उनकी लिखी किताब 'जीवन प्रकाश'। यह किताब मेरे हाथ में आई थी, पर कहां? मैंने इसे पढ़ा भी नहीं था, पर क्यों नहीं पढ़ा?

अन्ततः दिमाग़ ने यादों की गठरी खोल दी। याद आ गया। जीवन प्रकाश टाइटल की पुस्तक मैंने कमलेश्वर जी की मेज़ पर देखी थी। तब वे दिल्ली में दैनिक जागरण के सम्पादक थे। मैं उनके पास नौकरी मांगने गया था। जब कमरे में घुसा, तो कमलेश्वर जी मौजूद नहीं थे। मेज़ पर यही किताब पड़ी थी। मैंने इसे उठाया भर था कि कमलेश्वर जी आ गए थे। मैंने हड़बड़ा कर किताब मेज़ पर वापस रख दी थी। कमलेश्वर जी ने तब मुझे उस किताब और मुंशी रहमान ख़ाँ के बारे में संक्षेप में बताया था और कहा था कि कभी मौक़ा मिले तो ज़रूर पढ़ना। गंगो-जमुनी तहज़ीब की ज़िंदा मिसाल है यह क़िताब।

तो, सपने के पीछे यह बात थी। मैं कमलेश्वर के दो मिनट के लेक्चर को भूल गया, लेकिन दिमाग़ ने उसे किसी कोने में चुपचाप सहेज दिया। और, अभी जब पांच अगस्त को अयोध्या का ट्रिगर मिला तो उसने उसे सपना बना कर पेश कर दिया।

मैंने दिन भर नेट खंगाला कि मुंशी जी की आत्मकथा यानी 'जीवन प्रकाश' कहीं मिल जाए, पर देवनागरी में लिखी यह कीमती पुस्तक कहीं उपलब्ध नहीं है। किताब का अंग्रेज़ी और डच समेत कई यूरोपीय भाषाओं में अनुवाद हुआ है मगर अंग्रेज़ी पुस्तक 'The Autobiography of an Indentured Indian Labourer' भी आउट ऑफ प्रिंट है। पुस्तक की समीक्षाएं उपलब्ध हैं और यह रिपोर्ट उन्हीं समीक्षाओं पर आधारित है।

मुंशी जी की आत्मकथा कविताओं से सजी है। शायद किताब की शुरुआत उन्होंने मंगलाचरण से की हो। उनकी एक कविता इष्ट-वंदना देख कर यही लगा। थोड़ी बैसवाड़ी, बृज, बुंदेलखंडी और खड़ी बोली के बावजूद, वही तुलसी बाबा की भाषा, जिसमें उन्होंने मानस की रचना की थी! इन लाइनों को पढ़ कर शायद हर हिन्दू का मन गदगद हो जाएगा कि देखो तो, एक मुसलमान हमारी प्रार्थना गा रहा है। ऐसा इसलिए कि जिन शब्दों से ईश्वर का गुणगान हो रहा है, वे आज हिंदी और हिदुओं से जोड़ लिए गए हैं। पूरी प्रार्थना कहीं भी तौहीद के मुख़ालिफ़ नहीं है। दीनदयाला और कृपानिधान का कथित इस्लामीकरण करना हो तो बस इनको रहमान और रहीम में बदल दीजिए, बस!

तब का आदमी शायद ऐसा ही होता था। दोहा देखिए -

धर्म विरुद्ध बहु कार्य लख,
अस मन कीन्ह विचार।
देहुँ सीख दोउ धरम हित,
जो सहाय करतार।।

तो, मियां रहमान ख़ाँ धर्म विरुद्ध आचरण कर रहे दोनों धर्मों के लोगों को सीख देने का हौसला रखते हैं। आज कोई ऐसा करने की हिमाकत करे, तो दोउ धर्म वाले मिलकर लिंच कर दें। अपने जिस जन्मस्थल से मुंशी जी इतना प्रेम करते थे, आज वहां उनको जानने वाला कोई नहीं है। मुंशी जी का परिवार कहां चला गया, कुछ पता नहीं। और तो और, आज वहां एक भी मुस्लिम परिवार नहीं है। मुसलमानों के रहने के निशान, मसलन कोई जर्जर मस्जिद या टूटी-फूटी कब्र भी नहीं है। मुंशी जी अपने जन्मस्थान से बहुत प्रेम करते थे। उन्होंने आत्मकथा का पहला हिस्सा गांव, अपने दोस्तों, तत्कालीन समाज और हिंदुस्तान को दिया है।

मुंशी जी लिखते हैं कि वे पठान थे। उनके पुरखे मध्यकाल में कभी अफ़ग़ानिस्तान से भारत आ गए थे और कालांतर में हमीरपुर आ बसे। उनके पिता मोहम्मद ख़ाँ ज़मींदार के मुख़्तार थे। मुख़्तार बड़ी हनक वाली कुर्सी होती थी। मुंशी जी यह तो नहीं लिखते हैं कि उस वक्त के समाज में वैमनस्य नहीं था, लेकिन उच्च वर्ग के हिन्दू-मुसलमान मिलजुल कर सौहार्द से रहते थे। आपस में खूब राब्ता था। वे लिखते हैं कि स्कूल के हिन्दू शिक्षक उनसे बहुत प्रेम करते थे। यह कहते हुए वे यह चुहल भी कर डालते हैं कि हो सकता है कि यह प्रेम पिता के कारण हो क्योंकि वे शिक्षकों के घर गल्ला-पानी की कमी नहीं होने देते थे।

मुंशी जी अहीर दूधवाले, कायस्थ टीचर, दलित मज़दूर, क्षत्रिय राजा और भलेमानस मुस्लिम ज़मींदार की खूब चर्चा करते हैं। लेकिन इन तमाम जातीय शिनाख्तों के ज़िक्र के बावजूद इन सब के बीच कहीं संघर्ष नहीं था। वे किसी चेतराम मारवाड़ी का भी ज़िक्र करते हैं और बताते हैं कि जब उसका कुआं खुदा था, तो तमाम धार्मिक अनुष्ठान हुए थे। लेकिन, तमाम यकजहती के बाद भी हिन्दू और मुसलमानों के बीच एक ईगो का मामला बना रहता था।

मुंशी जी के पिता ने एक ज्योतिषी से कुंडली भी बनवाई थी। वे बताते हैं कि ज्योतिषी ने कहा था कि रहमान बहुत दूर तक जाएगा। बात सच निकली। बालक सूरीनाम चला गया। घुमक्कड़ी उनके नक्षत्र में थी। कानपुर उनकी पसंदीदा जगह थी। 12 अक्टूबर 1898 को वे अंतिम बार कानपुर आए। मकसद था रामलीला और दशहरा मेला देखना। इसी मेले के दौरान 24 साल के युवक रहमान को दो आदमी मिले। ये आदमी उन गोरों के एजेंट थे, जो दासों के खरीद-फरोख्त का काम करते थे। दरअसल, यह वह समय था, जब इस पर रोक लग चुकी थी लेकिन वेस्टइंडीज़, मॉरिशस आदि अनेक देशों में गोरे महाप्रभुओं को अब भी चीप लेबर की दरकार थी।

'24 रुपए मिलेंगे हर महीने' एजेंटों ने कहा था। उस वक्त यह बहुत बड़ी रकम थी। रहमान पढ़े-लिखे थे। खेत या खदान में काम करने का उन्हें कोई शौक नहीं था। 'काम क्या है?' रहमान ने पूछा। एजेंट चतुर थे। तुरन्त बोले, 'सरदारी।' सरदारी यानी मज़दूरों पर

सुपरवाइज़री। सरदार का पद, 24 रुपए महीने की सैलरी और सबसे ऊपर सात समंदर पार की घुमक्कड़ी! मुंशी जी के लिए इतना बहुत था। 'दस दिन बाद पानी का जहाज़ रवाना होगा' एजेंट ने कहा, 'फटाफट निकल जाओ। कलकत्ता की ट्रेन पकड़ो और बंदरगाह पहुंचो। वहां हुगली किनारे सूरीनाम क्वार्टर ढूंढ लेना। वहां वान देर बर्ग साहब मिलेंगे। हमारा नाम बताना। बाक़ी बंदोबस्त वे खुद कर देंगे।'

मुंशी जी जानते थे कि घर वाले अनुमति नहीं देंगे। सो वे कानपुर से सीधे कलकत्ता जा पहुंचे। वान देर बर्ग से मिले। वह एक डच था। उसने मुंशी जी से एक करार यानी एग्रीमेंट पर दस्तखत कराए। एग्रीमेंट पर साइन करने के बाद मुंशी जी एग्रीमेंटिया हो गए। एग्रीमेंटिया शब्द ही मज़दूरों की ज़बान से खेल करता हुआ कालांतर में गिरमिटिया बना।

जहाज़ में 950 भारतीय मजदूर थे। जहाज़ डच गयाना जा रहा था। सूरीनाम दरअसल डच कॉलोनी थी और पहले उसे डच गयाना ही कहा जाता था। सपना जहाज़ में टूटने लगा। मज़दूरों को न सुविधा और न सम्मान। तिस पर लगभग महीने भर की यात्रा। रहमान सब कुछ सहकर सूरीनाम पहुंचे तो और भी बड़ा झटका लगा। उनको सरदारी नहीं, मज़दूरी का काम मिला। कोमल हाथों वाले युवक की हथेलियों में छाले पड़ने लगे। मज़दूरी काम को तौल कर मिलती। हफ्ते में छह सेंट कमाना ज़रूरी। न कमा पाओ तो तीन दिन जेल में। मुंशी जी को कभी जेल नहीं जाना पड़ा। लेकिन एक दिन ऐसा भी आया कि उन्हें मज़ा आने लगा। वहां के मज़दूरों में भारतीयों के अलावा स्थानीय इंडियन, चीनी, जावा निवासी और क्रियोल समेत अनेक क़ौमें थीं। वे सबके साथ घुलने-मिलने लगे। गौरांग डच मालिकों के साथ भी उनके रिश्ते थे। आख़िरकार वे पढ़े लिखे हिन्दुस्तानी थे। हिंदी, उर्दू और फारसी के साथ अंग्रेज़ी का भी कुछ ज्ञान था। नतीजा यह हुआ कि धीरे-धीरे वे जावा, चीनी और क्रियोल मज़दूरों के साथ उनकी भाषा में थोड़ा-थोड़ा बोलने लगे। यही नहीं, वे अपने मालिकों की भाषा डच का भी ज्ञान रखने लगे। बाद में जब वे सरदार बने, तो उन्हें इन ज़बानों का बड़ा फायदा मिला। उन्हें मज़दूर की भाषा भी आती थी और मालिक की भी।

लोकसेवकों तथा सर्वोदय मित्रों का नवीनीकरण

वर्ष 2020-21 हेतु लोकसेवकों एवं सर्वोदय मित्रों के नवीनीकरण का कार्य चल रहा है। नवीनीकृत लोकसेवकों एवं सर्वोदय मित्रों की सूची 31 अगस्त तक सर्व सेवा संघ के प्रधान कार्यालय में पहुंच जानी चाहिए। अनेक राज्यों से यह सूची प्राप्त हो चुकी है, लेकिन अभी भी कई राज्यों की सूची आनी बाकी है। सभी सर्वोदय मंडलों से अपील है कि बचे हुए लोगों की सूची तथा शुल्कांश 31 अगस्त तक सेवाग्राम, प्रधान कार्यालय को भेजें। 31 अगस्त के बाद प्राप्त होने वाली सूची और शुल्कांश को स्वीकार नहीं किया जायेगा।

नोट : नवीनीकरण की सूची तथा शुल्कांश संबद्ध सर्वोदय मंडलों के द्वारा ही स्वीकार किये जायेंगे।

–महादेव विद्रोही
अध्यक्ष, सर्व सेवा संघ

पांच साल लंबी मज़दूरी के दौरान दो काम मुंशी जी बेनागा करते थे। पहला देवनागरी में डायरी लिखना। और, दूसरा शाम की चौपाल में रामचरित मानस का पाठ और किस्सागो अंदाज़ में पाठ की व्याख्या। मन आने पर वे महाभारत व अन्य ग्रन्थों पर भी चर्चा कर लिया करते थे। क्या उन दिनों जायसी, रसखान और रहीम बनने की कोई रवायत थी? पता नहीं। पर इतना पता है कि मुंशी जी को इस बात का बड़ा गर्व रहा करता था कि वे हिन्दू धर्म और कर्मकांडों को प्रोफेशनल पंडितों से बेहतर जानते हैं। उन्हें लोग कई बार पंडिज्जी और रामायणी जी के नाम से संबोधित भी किया करते थे। अद्भुत आदमी थे। नमाज़ के पाबन्द इस आदमी को पंज अरकान पर भी पूरी श्रद्धा थी। जिस रवानी से वे रामायण सुनाते थे, वैसे ही वे हदीस और इस्लामी इतिहास पर भी चर्चा कर लेते थे। पर उनकी चौपाल तो हिंदुओं के नाम ही थी।

मुंशी जी ने पांच साल मज़दूर की ज़िंदगी जी। एग्रीमेंट के मुताबिक वे अब स्वतंत्र थे। वे हिंदुस्तान लौट सकते थे या वहीं बस कर जो चाहते, कर सकते थे। उन्होंने वहीं रहने का फैसला किया। पांच साल में उन्होंने काफी नाम कमाया था। सो, वे जा पहुंचे रेल लाइन बिछा रहे ठेकेदार के पास। उसने तुरंत सरदारी यानी सुपरवाइजरी का काम दे दिया। मुंशी जी ने वहीं शादी कर ली और कालांतर में खेती के लिए जमीन भी खरीद ली। उन्होंने सूरीनाम की राजधानी पारामारिबो में घर ले लिया। अब वे सरदार भी थे, किसान भी और हिंदुस्तानियों के नेता भी।

खेती, नौकरी, समाजसेवा और रामायण बांचने के साथ-साथ मुंशी जी अपनी आत्मकथा 'जीवन प्रकाश' लिखते रहे। भारतीय समाज वहां मज़बूत होता गया। मुंशी जी पुस्तक में दोहों, चौपाइयों और कुंडलियों आदि के जरिए वहां बसे हिंदू-मुसलमानों को नैतिक शिक्षा देते नजर आते हैं। पुस्तक में एक टुकड़ा दुख का भी है, जब 1930 के दशक की शुरुआत में वहां साम्प्रदायिकता फैल जाती है। मुंशी जी इसके लिए कुछ संगठित समूहों का नाम भी लेते हैं। इनमें जिहादी मानसिकता वाले बाहरी तत्व शामिल हैं। शुद्धिकरण और बॉयकॉट के नारे भी लगने लगते हैं।

मुंशी जी बड़े कष्ट से लिखते हैं कि बॉयकॉट का ऐलान उनकी बेटी की शादी में हुआ। शादी में आए मेहमानों में एक थे इमाम कल्लन मियां और दूसरे थे ठाकुर पुरुषोत्तम सिंह। इन दोनों के बीच किसी बात पर मौखिक द्वंद्व हुआ तो बात बढ़ गई। चूंकि साम्प्रदायिक संगठनों ने हवा में बारूद पहले ही उड़ा रखी थी, इसलिए मेहमानों को दो हिस्सों में बंटते देर न लगी। रहमान मियां रामायणी कुछ न कर पाए और सवर्णों ने मुसलमानों एवं दलितों के सामाजिक बहिष्कार का एलान कर दिया। रहमान लिखते हैं कि दलितों का बहिष्कार टिक न सका क्योंकि कई ब्राह्मणों की रोटी दलितों के घर पूजा-पाठ से ही होती थी। वे बताते हैं कि पागलपन यहां तक बढ़ा कि जब बकरीद हुई तो हिंदुओं ने मुसलमानों को चिढ़ाने के लिए सुअरों की 'बलि' दे डाली।

यह वैमनस्य करीब दस साल तक चला। फिर यह अपने आप खत्म हो गया। दोनों संप्रदायों में फिर वैसे ही मधुर रिश्ते हो गए। मुंशी जी फिर रामायणी हो गए और लम्बा व शानदार जीवन जीते हुए 98 साल की उम्र में 1972 में यह दुनिया छोड़ गए। ❑

इतिहास का चेहरा बदलने की कोशिश और गाफिल समाज

❑ रामजी यादव

इधर कई सालों से मैं देख रहा हूँ कि संघी संगठनों के जो पोस्टर बन रहे हैं और आईटी सेल जो नैरेटिव प्रसारित कर रहा है, उसमें सुभाषचंद्र बोस, भगत सिंह, चन्द्रशेखर आजाद, अशफाक़- उल्लाह, राजगुरु, सुखदेव और बिस्मिल जैसे लोगों के बीच 'सावरकर' और 'श्यामा प्रसाद मुखर्जी' की भी तस्वीरें शामिल की जा रही हैं और लिखित सामग्री में ये दोनों नाम, इत्यादि के पहले जोड़ दिये जा रहे हैं। किसी-किसी पाठ में तो इत्यादि से तीन-चार नाम पहले भी ये दोनों उपस्थित हैं। इस प्रकार विचारों, संघर्षों और बलिदानों की परंपरा में 'इन' लोगों को बड़ी चतुराई से पैठाया जा रहा है।

पढ़े-लिखे, प्रबुद्ध और इतिहास से प्रेम करने वाले लोग अच्छी तरह जानते हैं कि सावरकर और श्यामा प्रसाद मुखर्जी भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के वारिस नहीं हैं। जब क्रांतिकारियों को फांसी दी जा रही थी, तब ये लोग हिन्दू महासभा के माध्यम से सामाजिक और धार्मिक विभाजन की भूमिकाओं में लगे हुए थे। सारी दुनिया जानती है कि भगत सिंह और उनके साथी राजनीतिक गुलामी के साथ-साथ शोषण की उस सारी व्यवस्था को पूरी तरह उखाड़ फेंकना चाहते थे, जो ब्रिटिश सत्ता, हिन्दू-मुस्लिम सामंती गठजोड़ और ब्राह्मणवादी-जातिवादी व्यवस्था का समुच्चय थी। इस प्रकार हम देखते हैं कि भगत सिंह और उनके साथियों से सावरकर और मुखर्जी का दूर-दूर तक कोई वैचारिक संबंध नहीं है और न ही इन लोगों के बीच किसी भी मुद्दे पर कोई सहमति है। राजनीतिक संघर्षों में किसी तरह के किसी संबंध का तो सवाल ही नहीं पैदा होता है।

अगर इस बात को यूं ही जाने दें, तो कहना ही क्या। जहां देश बिक रहा है, वहां ऐसे पाठ-कुपाठ पर बात ही क्या हो, लेकिन असल में इस संगीन गतिविधि के निहितार्थों की ओर ध्यान देने की जरूरत है कि एकछत्र और अनियंत्रित सत्ता के बावजूद बीजेपी आईटी सेल को इस तरह के पाठों और पोस्टरों की जरूरत क्या है? यह बात आइने की तरह साफ है कि भारतीय जनता की स्मृतियों में राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन की एक व्यापक स्मृति है। इस संघर्ष की बदौलत ही आज भारत एक संप्रभुतासंपन्न देश है, जिसका अपना संविधान और संसद है। हर आम-ओ-खास को इसका महत्व पता होना चाहिए। सच तो यह है कि यह खास से कहीं अधिक आम लोगों को पता होना चाहिए, क्योंकि संविधान उनके जीवन और हितों की सुरक्षा करता है। सिर्फ सुरक्षा ही नहीं करता, बल्कि उन्हें बुरी से बुरी परिस्थितियों से लड़ने का अधिकार देता है। यह संविधान जनता को संसद के भीतर के दृश्यों को बदल देने तक का अधिकार देता है और यह एक-एक नागरिक का सबसे सच्चा दोस्त है। बेशक आज दृश्य उलट गया है और संविधान खतरे में है। संविधान खतरे में है इसलिए जनता भी खतरे में है, लेकिन स्थितियां इस बात की ओर इशारा कर रही हैं कि जनता को जितनी जरूरत संविधान की है, उतनी ही जरूरत संविधान को भी जनता की है। इस बात को समझना होगा।

इस बात को नहीं समझा जा रहा है, इसीलिए संघी और बीजेपी आईटी सेल भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन के गौरवशाली इतिहास और उसके नायकों के बीच उन लोगों का चेहरा घुसेड़े जा रहे हैं, जिनका उनसे दूर-दूर तक कोई नाता नहीं है। दरअसल, जनता पर यह एक मनोवैज्ञानिक हमला है। यह मनोवैज्ञानिक हमला इसलिए किया जा रहा है कि संघी चाहे जितनी भी बेहयाई कर लें, लेकिन वे बहुत अच्छी तरह जानते हैं कि भारतीय राष्ट्रीय मुक्ति आंदोलन में उनका कोई भी योगदान नहीं है और उनका कृत्य भगत सिंह और उनके साथियों के कामों के ठीक उलट ही नहीं, बल्कि उसकी अवधारणा को क्षतिग्रस्त करने वाला भी है। हिन्दू महासभा और संघ की हैसियत वही है, जो मुस्लिम लीग की है। दोनों का उद्देश्य और निहितार्थ, भाषा और चाल-चरित्र एक ही है। फर्क यह है कि मुस्लिम लीग मुसलमानों की बात करता है और संघ हिंदुओं की, जबकि वास्तविकता यह है कि न संघ ने हिन्दू शोषकों से जनता की मुक्ति की बात की न मुस्लिम लीग ने मुस्लिम शोषकों से। वास्तविकता यह है कि दोनों ही, शोषकों की ताकत को धार्मिक आवरण में और भी मजबूत और भयानक बनाते हैं। अपने इस पाप को छिपाने के लिए आज संघियों और बीजेपी आईटी सेल को ऐसे झूठे और अनर्गल पोस्टरों तथा नैरेटिव की जरूरत पड़ रही है।

हम देखते हैं कि जहां-जहां जरा सी उदासीनता और गुंजाइश मिली, वहां-वहां उन्होंने खुद को घुसाया है। जैसे किसी ठुँसी हुई बस में कोई गुंडा या लफंगा लोगों को अपनी पीठ और हाथों से धक्का देता और रगड़ता हुआ अपने लिए मनचाही जगह बनाने की कोशिश करता है, वैसे ही वे पूरी तरह षड्यंत्रकारी होकर मनचाहे पोस्टर और नैरेटिव बना रहे हैं। उनके लिए एक बहुत बड़ी गुंजाइश यह है कि इतिहास की समझ रखने वाली पीढ़ियों के अधिकांश लोग अब नहीं रहे या विस्मृति के शिकार हो रहे हैं। अब जो बच रहे हैं, वे शायद सरेंडर करने की स्थिति में हैं। इस गुंजाइश के बाद उनका रास्ता अधिक सुगम हो गया है। नयी पीढ़ियों के दौर में नैरेटिव और पोस्टर बदलना एक आसान प्रक्रिया है। यानि संघियों का विस्तार उस दौर में अधिक प्रभावशाली हो सकता है, जब प्रतिरोध खत्म हो चुका हो, जब व्यापक समाजों के लोगों के भीतर से अपने संवैधानिक अधिकारों और हितों के प्रति चेतना मर रही हो। जब कहीं कोई बोलने को तैयार न हो, तब वे हमला कर देते हैं। कायर लोग मॉब लिंचिंग में विश्वास करते हैं। भीड़ को भड़का कर हिंसक बना देते हैं। जाहिर है, ऐसे में कोई अकेला और सीधा-सादा व्यक्ति कमजोर हो जाता है और मारा जाता है। लेकिन यह कब तक?

जब तक जनता गाफिल है, तब तक। बेशक जनता को गाफिल रखने के लिए संघ और बीजेपी आईटी सेल दिन-रात झूठ गढ़ रहे हैं, लेकिन जैसे ठुँसी हुई बस में लोगों को धकियाते हुये गुंडे और लफंगे की घिग्घी तब बंध जाती है, जब लोग न केवल उसको डांटने पर उतर आते हैं, बल्कि गर्दन से पकड़ कर झुला देते हैं। झूठ गढ़ते संघियों का वर्चस्व उसी समय टूटना शुरू हो जाएगा, जब उनके हमलों के प्रत्यक्ष और परोक्ष शिकार होने वाले लोग, उनके फर्जी पाठों और पोस्टरों को खारिज कर देंगे। संघ का प्रभुत्व उसी दिन धूमिल होना शुरू हो जायेगा, जिस दिन वे सब लोग अपनी इच्छाओं, आकांक्षाओं को जोरदार आवाज में व्यक्त करेंगे, जिनकी उदासीनता और बेज़ारी के रथ पर संघी झण्डा लहरा रहा है। - **जनपथ**

यह पत्रकारिता के पतन का दौर है

❑ शेष नारायण सिंह

पूरी दुनिया में कोरोना वायरस के विषाणु के कारण हाहाकार मचा हुआ है. भारत में भी यह बहुत ही खतरनाक बीमारी साबित हो चुकी है. लोगों को तरह तरह की पेशानियां झेलनी पड़ रही हैं. कहीं अस्पताल की सुविधा नहीं है, तो कहीं क्वारंटाइन के प्रबंधन को लेकर मुसीबतें हैं. गाँवों में भी लोग कोरोना संक्रमित हो रहे हैं, लेकिन उनकी गिनती नहीं हो रही है क्योंकि किसी अस्पताल या सरकारी एजेंसी में उनका कहीं कोई रिकार्ड नहीं है. अगर किसी की कोरोना से मृत्यु हो रही है, तो ऐसी भी सूचना आ रही है कि उसके घर परिवार वाले उसका अंतिम संस्कार तक नहीं कर पा रहे हैं. कोरोना से बीमार लोगों को परिवार के लोग छोड़कर जिम्मेदारी से मुक्त हो रहे हैं. यह जितने भी विषय हैं, यह सब समाचार हैं. ईमानदारी की पत्रकारिता में ये सारी ख़बरें हेडलाइन की ख़बरें मानी जायेंगी.

असम, बिहार और उत्तराखंड में बरसात में आने वाली बाढ़ के चलते तबाही आई हुई है. सड़कें टूट रही हैं, पुल गिर रहे हैं. गाँवों में पानी घुस आया है, इंसानी जिंदगी मुसीबत के मंझधार में है. मानवीय विपत्ति की यह ख़बरें भी अगर कहीं आ रही हैं, तो साइड की ख़बरों की तरह चलाई जा रही हैं. लेकिन कुछ टीवी चैनलों में तो बिलकुल नदारद हैं. हां, कुछ चैनल इन ख़बरों को भी ज़रूरी प्राथमिकता दे रहे हैं लेकिन आमतौर पर ज्यादातर टीवी चैनलों की ख़बरों को देखकर लगता है देश में सब अमन चैन है, कहीं कोई परेशानी नहीं है.

अजीब बात है कि फ्रांस से बहुत ही महंगे दाम में खरीदे गए रफायल युद्धक विमानों को घंटों ख़बरों में चलाया गया. कई साल के विवाद के बाद अयोध्या में राम मन्दिर का निर्माण होना है. यह खबर हफ्तों से टीवी चैनलों पर छायी रही। टीवी चैनलों की एक अन्य खबर है कि मुंबई में सिनेमा के अभिनेता सुशांत सिंह राजपूत ने आत्महत्या कर ली है. उसकी जाँच चल रही है. अमिताभ बच्चन की बीमारी भी कई दिनों तक टीवी चैनलों का मुख्य विषय बनी रही. इन खबरों के बीच में मुंबई सहित बाकी देश में कोरोना के कारण पैदा हुई आर्थिक तबाही, बेरोजगारी, फिल्मी दुनिया में ही काम करने वालों की भीख माँगने की मजबूरी का कहीं भी जिक्र नहीं हो रहा है. बड़े शहरों से बेरोजगार होकर गाँवों में गये लोग जिस तरह से अपराध की तरफ प्रवृत्त हो रहे हैं, वह भी कहीं चर्चा में नहीं आ रहा है.

राजस्थान में संविधान की व्याख्या को लेकर जो संकट मौजूद है, उसका भी जिक्र केवल सचिन पायलट के अधिकारों को छीन लेने तक सीमित कर दिया गया है. वहां के राज्यपाल की संदिग्ध भूमिका का टीवी चैनलों पर विश्लेषण नहीं हो रहा है. मायावती की राजनीति में बहुत बड़ा शिफ्ट आ चुका है. अगर कबीरपंथी पत्रकारिता का दौर होता, तो विधिवत विश्लेषण किया जाता, लेकिन ऐसा कहीं कुछ देखने को नहीं मिल रहा है.

इस तरह की पत्रकारिता को चारण पत्रकारिता कहते हैं. टीवी चैनल देखने से लगता है कि रफायल युद्धक विमान और राम मंदिर के शिलान्यास से बड़ी कोई खबर ही नहीं है.जबकि पत्रकारिता का बुनियादी सिद्धांत यह है कि इंसानी मुसीबतों या उनकी बुलंदियों के बारे में सूचना दी जाए. सवाल यह है कि मीडिया संस्थान सच्चाई को दिखाने से डरते क्यों हैं. संविधान मीडिया को जनहित में अपनी बात कहने की आज़ादी देता है. प्रेस की आज़ादी की व्यवस्था संविधान में ही है. अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता की व्यवस्था भी दी गयी है, प्रेस की आज़ादी उसी से निकलती है. इस आज़ादी को सुप्रीम कोर्ट ने अपने बहुत से फैसलों में सही ठहराया है. प्रेस की अभिव्यक्ति की आज़ादी को मौलिक अधिकार के श्रेणी में रख दिया गया है. संविधान में लिखा है कि भारत की प्रभुता और अखंडता, राज्य की सुरक्षा, विदेशी राज्यों के साथ मैत्रीपूर्ण संबंधों, लोक व्यवस्था, शिष्टाचार या सदाचार के हितों में अथवा न्यायालय-अवमानना, मानहानि या अपराध-उद्दीपन के संबंध में युक्तियुक्त निर्बंधन, जहां तक कोई विद्यमान विधि अधिरोपित करती है, वहां तक अभिव्यक्ति की आजादी के अधिकार के प्रयोग पर प्रभाव नहीं डालेगी या वैसे निर्बंधन अधिरोपित करने वाली कोई विधि बनाने से राज्य को निवारित नहीं करेगी.' यानी प्रेस को आज़ादी के मौलिक अधिकारों के तहत कुछ भी मनचाहा लिखने या बोलने की आज़ादी भी नहीं है.

इस लोकतंत्र को बहुत ही मुश्किल से हासिल किया गया है और उतनी ही मुश्किल से इसको संवारा गया है. अगर समाचार संस्थान जनता तक सही बातें और वैकल्पिक दृष्टिकोण नहीं पंहुचायेंगे, तो सत्ता पक्ष के लिए भी मुश्किल होगी. इंदिरा गांधी ने यह गलती 1975 में की थी. उन्होंने इमरजेंसी में सेंसरशिप लगा दी थी. सरकार के खिलाफ कोई भी खबर नहीं छप सकती थी. टीवी और रेडियो पूरी तरह से सरकारी नियंत्रण में थे, उनके पास तक जा सकने वालों में सभी चापलूस होते थे, उनकी जयजयकार करते रहते थे, इसलिए उनको सही ख़बरों का पता ही नहीं लगता था. नौकरशाही ने उनको बता दिया था कि देश में उनके पक्ष में बहुत भारी माहौल है और वे दुबारा भी बहुत ही आराम से चुनाव जीत जायेंगी. चुनाव करवा दिया गया और 1977 में वे बुरी तरह से हार गईं।

चारण पत्रकारिता सत्ताधारी पार्टियों की सबसे बड़ी दुश्मन है, क्योंकि वह सत्य पर पर्दा डालती है और सरकारें गलत फैसला लेती हैं. ऐसे माहौल में सरकार की जिम्मेदारी बनती है कि वह मीडिया को निष्पक्ष और निडर बनाए रखने में योगदान करे और चापलूस पत्रकारों से पिंड छुडाये. सरकार को चाहिए कि पत्रकारों के सवाल पूछने के अधिकार और आज़ादी को सुनिश्चित करे. साथ ही संविधान की सीमा में रहते हुए कुछ भी लिखने की आज़ादी और अधिकार को सरकारी तौर पर गारंटी की श्रेणी में ला दे. इससे निष्पक्ष पत्रकारिता का बहुत लाभ होगा. ऐसी कोई व्यवस्था कर दी जाए, जो सरकार की चापलूसी करने को कर्तव्य पर कलंक माने और इस तरह का काम करने वालों को हतोत्साहित करे. अगर मौजूदा सरकार इस तरह का माहौल बनाने में सफल होती है तो वह राष्ट्रहित और समाज के हित में होगा.

-मीडिया स्वराज

प्रशांत भूषण के जरिये खुलेंगी अवमानना के मामलों की परतें

❑ योगेन्द्र यादव

प्रशांत भूषण के विरुद्ध अदालत की अवमानना के बहुप्रतीक्षित मामले में सुनवाई शुरू हो रही है। बीते दिनों में इस मामले पर मीडिया ने अपना मुंह खोला है. कई पूर्व जज, नागरिक तथा कार्यकर्ताओं ने प्रशांत भूषण के पक्ष में आवाज उठायी है. प्रशांत भूषण के पक्ष में जो बातें कही गई हैं, उनमें ज्यादातर का जोर अवमानना के कानून के पुराने-धुराने और अप्रासंगिक होने, सहिष्णुता के मूल्य, अदालत के उदारमना होने की जरूरत या फिर इस बात पर केंद्रित हैं कि प्रशांत भूषण ने जनसेवा-भावी वकील के रूप में देश की क्या और कितनी सेवा की है.

बीते तीन दशक से प्रशांत भूषण लगातार जनहित के मुद्दे पर बोलते रहे हैं, उन्होंने अपनी बात पर्याप्त जिम्मेदारी के भाव से कही है और ऐसा कहते हुए उन्होंने जोखिम उठाये हैं. उनकी मंशा ये रही है कि भारत की शीर्षस्थ अदालत में सुधार की जरूरत पर लोगों का ध्यान जाये. अवमानना के इस मामले से एक अवसर मिला है कि प्रशांत भूषण ने जो मसले उठाये हैं, उन पर चर्चा हो.

जाहिर है, सुप्रीम कोर्ट ने प्रशांत भूषण के खिलाफ अवमानना के 11 साल पुराने मामले को फिर से उठाने का तय किया है तो अदालत का यह फैसला स्वागतयोग्य है. मैं मामले में होने जा रही सुनवाई पर पूरी उम्मीद से नजर लगाये हुए हूं, क्योंकि सुनवाई से उस गंभीर मसले का उत्तर मिलना है जो प्रशांत भूषण ने तहलका के अपने मूल इंटरव्यू में उठाया था. तब उन्होंने संवैधानिक पदों पर बैठे शीर्ष अधिकारियों को लेकर कोई चमकीली-चुटीली और चलताऊ बात नहीं कही थी. जब साल 2009 में अवमानना के मामले में पहली बार अदालती प्रक्रिया शुरू हुई तो प्रशांत भूषण ने अपने आरोपों के साथ अदालत को तीन हलफनामे सौंपे थे, जिनमें आरोपों की पुष्टि में दस्तावेजी प्रमाण दिये गये थे.

हलफनामे में साल 1991 से 2010 के बीच भारत के मुख्य न्यायाधीश के पद पर विराजमान रहे 18 जजों में से आठ का नाम लिया गया था, उनके विरुद्ध भ्रष्टाचार के विशिष्ट मामलों का उल्लेख किया गया था और इन मामलों के पक्ष में यथासंभव दस्तावेजी साक्ष्य संलग्न किये गये थे. जरा कल्पना कीजिए कि कितनी मेहनत लगी होगी, कितना साहस करना पड़ा होगा इतने ऊंचे पद पर बैठे अधिकारियों के खिलाफ ऐसे सवाल पूछने और इन सवालों के पक्ष में भरपूर ब्यौरे के साथ साक्ष्य जुटाने में.

लेकिन अदालत कभी इन साक्ष्यों की परीक्षा के लिए बैठी ही नहीं. मामले में आखिरी सुनवाई आठ साल पहले हुई थी और तब से मामले पर एकदम से चुप्पी है. इस चुप्पी से यह धारणा बनती है कि अदालत के लिए इन साक्ष्यों की तौल-परख कर पाना बहुत भारी साबित हुआ है. माननीय जजों ने चाहे जिन कारणों से भी अवमानना के मामले पर सुनवाई का फैसला किया हो, लेकिन हमें सुप्रीम कोर्ट का निश्चय ही शुक्रगुजार होना चाहिए कि उसने प्रशांत भूषण के असहज करते सवालों से टकराने और उन पर फैसला देने का तय किया है. अवमानना के मामले में सुप्रीम कोर्ट में होने जा रही सुनवाई एक ऐतिहासिक अवसर है, जब लंबे समय से उपेक्षित रहे कुछ अहम मसलों पर सार्वजनिक रुप से बहस का मौका होगा.

बीते कुछ साल सुप्रीम कोर्ट के इतिहास में बड़े उथल-पुथल भरे साबित हुए हैं, जब प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के खिलाफ भ्रष्टाचार और एक मुख्य न्यायाधीश के विरुद्ध यौन उत्पीड़न का मामला उछला, अदालत के वरिष्ठ जजों ने इस बात को लेकर प्रेस-कान्फ्रेंस बुलायी कि मुख्य न्यायाधीश अपने 'मास्टर ऑफ रोस्टर' सरीखे अधिकार का दुरुपयोग कर रहे हैं. ये मामले देश की शीर्ष अदालत के लिए किसी बड़े झटके से कम नहीं कहे जायेंगे. शीर्ष पांत के ज्यादातर टिप्पणीकारों, अखबारों तथा कई पूर्व जजों ने बड़े मानीखेज सवाल पूछे हैं कि इन तमाम मामलों के देश में लोकतंत्र के भविष्य के लिहाज से आखिर क्या अर्थ निकलते हैं. क्या सुप्रीम कोर्ट से संविधान की संरक्षा की अपनी जिम्मेवारी में कहीं चूक हुई है? क्या मुख्य न्यायाधीश सुप्रीम कोर्ट के अभिभावकत्व की अपनी भूमिका का सही-सही निर्वहन कर पाये हैं?

इस सिलसिले की आखिरी बात यह कि हमें अवमानना के मामले में होने जा रही सुनवाई से उम्मीद रखनी चाहिए कि उससे कानून और लोकतंत्र से जुड़े एक बुनियादी सवाल का उत्तर मिलेगा. सवाल यह कि सच्चाई अगर अदालत के लिए असहज करने वाली हो तो क्या ऐसी सच्चाई को अदालत की अवमानना माना जायेगा? क्या अदालत के बारे में कोई साक्ष्य-पुष्ट विधिवत दर्ज राय, जिसकी परीक्षा होनी शेष है, अदालत की अवमानना के तुल्य समझ ली जाये? क्या अदालत के आंगन के अनैतिक आचार के खिलाफ बोलने से पहले किसी व्यक्ति को अपने हर आरोप की सच्चाई साबित करके कदम बढ़ाना चाहिए?

इस संबंध में अदालत से मेरी तीन अपेक्षाएं हैं। एक तो ऐसी सुनवाई खुली अदालत में होनी चाहिए। दूसरे, साक्ष्यों को प्रस्तुत करने और उनकी जांच के लिए पर्याप्त समय दिया जाना चाहिए। तीसरी बात, सुनवाई पांच वरिष्ठतम जजों(या भावी मुख्य न्यायाधीशों) की पीठ करे, इसमें मौजूदा मुख्य न्यायाधीश को शामिल न किया जाये (क्योंकि ट्वीट में उनका नाम है) तथा जस्टिस अरुण मिश्र को भी ऐसी सुनवाई में शामिल न किया जाये, क्योंकि प्रशांत भूषण के पास ये मानने के पर्याप्त कारण हैं कि जस्टिस अरुण मिश्र के होते उनके साथ इंसाफ नहीं हो सकता.

अगर सुनवाई इन तीन शर्तों को पूरा करते हुए होती है और निष्पक्ष सुनवाई के बाद अदालत इस फैसले पर पहुंचती है कि प्रशांत भूषण ने अपने शपथपत्र में जो कुछ कहा है, वह झूठ है, तो प्रशांत भूषण को दंड दिया जाये. और, जो ऐसी बात साबित होकर नहीं निकलती है, तो फिर क्या अदालत बहु-प्रतीक्षित आत्म-परीक्षण के काम में लगेगी और अपने भीतर दूरगामी सांस्थानिक सुधार के बाबत सोचेगी? ❑

चीफ जस्टिस का मतलब सुप्रीम कोर्ट नहीं होता

(प्रशांत भूषण का ऐतिहासिक और दस्तावेज़ी जवाब)

सुप्रीम कोर्ट द्वारा आपराधिक अवमानना का जवाब देते हुए वरिष्ठ अधिवक्ता प्रशांत भूषण ने जो हलफ़नामा दायर किया है, वह भारत में लोकतंत्र के क्षरण पर एक ऐतिहासिक और दार्शनिक दस्तावेज जैसा है, जिसमें अभिव्यक्ति की आज़ादी के मूलभूत मूल्यों और संवैधानिक अधिकारों की जबरदस्त पैरवी की गयी है।

प्रशांत भूषण ने 115 पन्ने के हलफ़नामे में जो सबसे बड़ी बात कही है, वह यह कि जिन दो ट्वीट के आधार पर उनके खिलाफ आपराधिक अवमानना का मुकदमा चलाया जा रहा है, उनमें ज़ाहिर उनके विचार बोनाफाइड यानी प्रामाणिक हैं। दूसरी अहम बात जो उन्होंने कही है, वह यह कि मुख्य न्यायाधीश सुप्रीम कोर्ट नहीं हङ्कं और सुप्रीम कोर्ट मुख्य न्यायाधीश नहीं है। सुप्रीम कोर्ट में 31 जज हैं।

उन्होंने अपने हलफ़नामे के आरंभ में ही बिंदु संख्या 2 में इस तथ्य को रेखांकित किया है कि अदालत से उन्हें अवमानना का जो नोटिस भेजा गया था, उसमें महक माहेश्वरी द्वारा 21 जुलाई 2020 को दाखिल अवमानना याचिका की प्रति संलग्न नहीं थी। उन्होंने 28 जुलाई को सुप्रीम कोर्ट के सेक्रेटरी जनरल को लिखकर कहा था कि मूल याचिका की प्रति उन्हें मुहैया करायी जाए, लेकिन अब तक उन्हें अवमानना याचिका उपलब्ध नहीं करायी गयी है। वे लिखते हैं कि उसके अभाव में इस अवमानना नोटिस का जवाब देने में मैं खुद को ''हैंडिकैप्ट'' मान रहा हूं, हालांकि उसके प्रति बिना किसी पूर्वाग्रह के नोटिस पर मैं अपना प्राथमिक जवाब भेज रहा हूं।

जिन ट्वीट्स पर प्रशांत भूषण को नोटिस गया है, उनमें एक ट्वीट उन्होंने 29 जुलाई को किया था, जिसमें मोटरसाइकिल पर बैठे मुख्य न्यायाधीश की एक तस्वीर के बारे में एक टिप्पणी की थी, जो सोशल मीडिया पर बहुत वायरल हुई थी। वे इस ट्वीट के बचाव में हलफ़नामे में लिखते हैं कि पिछले तीन माह से ज्यादा वक्त से सुप्रीम कोर्ट के भौतिक संचालन के ठप होने पर वे आक्रोशित थे, जिसके चलते नागरिकों के मूलभूत अधिकार संबोधित नहीं हो पा रहे थे। वे लिखते हैं कि सीजेआई का कई लोगों के बीच बिना मास्क के देखा जाना हालात की विसंगति को बयान कर रहा था (सुप्रीम कोर्ट के प्रशासनिक मुखिया होने के नाते), जहां कोविड के डर से सीजेआई ने सुप्रीम कोर्ट पर ताला लगा रखा है, जबकि दूसरी ओर वे सार्वजनिक स्थल पर कई लोगों से बिना मास्क पहने घिरे दिख रहे हैं। यह तथ्य कि वे 50 लाख की कीमत वाली मोटरसाइकिल पर बैठे थे, जिसका मालिक बीजेपी का एक नेता था, सोशल मीडिया पर प्रकाशित दस्तावेजी साक्ष्यों से स्थापित है। यह तथ्य कि वे राजभवन में थे, इसे भी मीडिया के कुछ हिस्से में रिपोर्ट किया गया है। इन हालात की विसंगति पर मेरा आक्रोश तथ्यों के मद्देनज़र कोर्ट की अवमानना नहीं कहा जा सकता।

वे आगे बिंदु 4 में लिखते हैं कि जहां तक 27 जुलाई के मेरे ट्वीट का सवाल है, उसके तीन विशिष्ट तत्व हैं और प्रत्येक में छह साल से चल रहे हालात पर और खासकर पिछले चार सीजेआई की भूमिका और सुप्रीम कोर्ट की भूमिका पर मेरी बोनाफाइड ओपिनियन है। ट्वीट का पहला हिस्सा मेरी स्थापित राय है कि भारत में लोकतंत्र पिछले छह साल में नष्ट किया गया है। दूसरा हिस्सा भी मेरी राय है कि सुप्रीम कोर्ट ने लोकतंत्र को नष्ट होने देने में इसे इजाज़त देकर अहम भूमिका निभायी है और तीसरा हिस्सा पिछले चार मुख्य न्यायाधीशों की इसमें भूमिका पर है।

प्रशांत भूषण कहते हैं कि उनकी अभिव्यक्ति भले ही बड़बोलापन हो, कोई उससे असहमत हो या किसी के लिए वह बेस्वाद हो, लेकिन वह अदालत की अवमानना नहीं है। अपनी बात के समर्थन में वे आगे ब्रिटेन, यूएस और यूके की अदालतों के उदाहरण देते हैं।

छठवां बिंदु इस हलफ़नामे में अहम है, जहां वे कहते हैं कि चीफ जस्टिस सुप्रीम कोर्ट नहीं हैं। यह मान लेना कि 'सीजेआई ही सुप्रीम कोर्ट है या सुप्रीम कोर्ट का मतलब सीजेआई ही है', भारत की सुप्रीम कोर्ट की संस्था का अवमूल्यन होगा।

प्रशांत भूषण ने हाल ही में अवमानना के संदर्भ में अखबारों में आये कुछ लेखों का भी हवाला दिया है और एक अखबार के संपादकीय का भी वे जिक्र करते हैं। इसके अलावा वे दो अमेरिकी विद्वानों की लिखी पुस्तक ''हाऊ डेमोक्रेसीज़ डाई'' से एक लंबा हिस्सा उद्धृत कर के भारत के संदर्भ में उस प्रक्रिया को दर्शाते हैं।

लोकतंत्र के क्षरण पर प्रशांत भूषण का यह हलफ़नामा अपने आप में समकालीन राजनीति, समाज और न्यायपालिका पर एक गम्भीर टिप्पणी और दस्तावेज़ है, जिसे पूरा पढ़ा जाना चाहिए। ❑

वरिष्ठ अधिवक्ता दुष्यंत दवे ने सुप्रीम कोर्ट पर उठाये सवाल

सुप्रीम कोर्ट की आलोचना के मामले में अवमानना का सामना कर रहे प्रशांत भूषण के मामले को लेकर वरिष्ठ अधिवक्ता दुष्यंत दवे ने न्यायपालिका पर कई सवाल उठाये। दुष्यंत दवे अवमानना मामले में प्रशांत भूषण की पैरवी कर रहे थे। उन्होंने कहा कि एडवोकेट प्रशांत भूषण ने चीफ जस्टिस एसए बोबड़े और न्यायपालिका के बारे में जो टिप्पणियां कीं, वे अवमानना नहीं हैं। अपनी दलीलों से दवे ने अपने मुवक्किल प्रशांत भूषण की तरफ से किये गये ट्वीट का बचाव किया।

उन्होंने कहा कि उनके मुवक्किल के ट्वीट संस्था के खिलाफ नहीं थे। वे न्यायाधीशों के खिलाफ उनकी व्यक्तिगत क्षमता के अंतर्गत निजी आचरण के संबंध में की गयी टिप्पणियां हैं। वे दुर्भावनापूर्ण नहीं हैं और न्याय के प्रशासन में बाधा नहीं डालती हैं। उन्होंने कहा कि प्रशांत भूषण ने न्यायशास्त्र के विकास में बहुत बड़ा योगदान किया है और कई महत्त्वपूर्ण निर्णयों का श्रेय उन्हें जाता है।

सुनवाई के दौरान उन्होंने यह सवाल उठाया कि कुछ जजों को ही राजनीतिक रूप से संवेदनशील मामले क्यों मिलते हैं? उन्होंने इस संबंध में राफेल, अयोध्या और सीबीआई डायरेक्टर वाले मामलों का जिक्र किया। उन्होंने जस्टिस नरीमन का उदाहरण दिया, जिन्हें इस तरह के मामले नहीं मिलते। उन्होंने कहा कि जजों को जिस तरह से केसों का आवंटन किया जाता है, उससे आलोचना के लिए अनुकूल जमीन तैयार हो जाती है।

सुनवाई के दौरान उन्होंने पूर्व सीजेआई रंजन गोगोई के यौन उत्पीड़न मामले का भी जिक्र किया। उन्होंने पूछा कि इसका क्या असर पड़ा? हमें इन गंभीर मुद्दों को उठाना चाहिए। इतने गंभीर मामलों में आपके फैसले आते हैं और उसके बाद आपको राज्यसभा सीट और जेड प्लस सिक्योरिटी मिल जाती है। यह क्या प्रभाव छोड़ता है?

दवे ने कहा कि पूर्व चीफ जस्टिस रंजन गोगोई के खिलाफ सुप्रीम कोर्ट ने जिस तरह से यौन उत्पीड़न के मामले को हैंडल किया, उससे संस्थान की छवि खराब हुई।

यह बहिष्कार प्रतिशोध है

❑ अरविन्द अंजुम

चीनी फौज द्वारा गलवान घाटी और पैंगोंग झील क्षेत्र में अपनी दबिश बढ़ाने, उन इलाकों में स्थाई संरचनाओं का निर्माण करने और यहां तक कि 15-16 जून की दरम्यानी रात में भारत के 20 सैनिकों को मौत के घाट उतार देने की घटनाओं ने भारतीय जनमानस को गहरे अवसाद में धकेल दिया है। इस घटनाक्रम ने भारतीयों के पिछले एक दशक में फले-फूले उन्मत्त राष्ट्रवाद को भी संकट में डाल दिया है। लद्दाख में अभी भी तनाव बना हुआ है। सरकार आश्चर्यजनक और रहस्यमय चुप्पी साधे हुए हैं। खंडित सामूहिक आत्मसम्मान और सीमा पर उपजी बेबसी से उबरने के लिए और खुद को आश्वस्त करने के लिए बदले की भावना से प्रेरित होकर चीनी सामानों के बहिष्कार की हवा बनाई जा रही है। याद रखें कि ऐसी ही एक हवा 2017 में डोकलाम विवाद के समय बनाई गई थी, पर वह सिलसिला एक तमाशा बन कर रह गया। सच यही है कि उसके बाद प्रत्येक क्षेत्र में चीन के साथ व्यापार बढ़ा है और इसमें चीन की हिस्सेदारी लगभग तीन चौथाई की है।

ताज़ा बहिष्कारवादियों पर कुछ कहा जाय, इससे पहले इतिहास की एक निराली घटना को जान समझ लें। दुनिया के इतिहास में किसी काल में ऐसी घटना नहीं हुई। वह था जापान द्वारा पूरी दुनिया का बहिष्कार। इसे जापान की दरवाजाबंदी के रूप में जाना जाता है। जापान ने विदेशियों से परेशान होकर 1641 में दुनिया के हरेक देश से अपना संबंध तोड़ लिया, आना-जाना, संपर्क-संबंध, व्यापार सब बंद।

अपने को हर तरफ से अलग-थलग कर लेना आसान नहीं होता है। बहुत ही खतरनाक है, यह, व्यक्ति के लिए भी और राष्ट्र के लिए भी। लेकिन जापान इस खतरे को पार कर गया। उसके यहां अंदरूनी शांति बनी रही और उसने अपने युद्धों के नुकसान को भी पूरा कर लिया। अंत में 1853 में उसने अपने दरवाजे और खिड़कियां खोलीं तो एक और असाधारण काम कर दिया। वह तेजी के साथ आगे बढ़ा, झपटा और अपने खोए हुए समय की पूर्ति कर ली। उसने दौड़कर यूरोपीय कौमों को पकड़ लिया और उन्हीं की चाल में उन्हें मात दे दी।

यह कैसे संभव हुआ? पुरानी सामंती प्रथाएं कर दी गईं। सम्राट ने राजधानी क्योतो से बदलकर तोक्यो बनायी। एक नए संविधान की घोषणा हुई। शिक्षा, कानून, उद्योग आदि हर एक चीज में परिवर्तन हुआ। कारखाने बने और आधुनिक ढंग की जल एवं थल सेना तैयार की गई। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि अपने समाज के नवनिर्माण के लिए, अपनी शिक्षा को उन्नत बनाने के लिए उसने विदेशों से विशेषज्ञ बुलाए और जापानी विद्यार्थियों को यूरोप और अमेरिका भेजा। वे भारतीयों की तरह बैरिस्टर बनने के लिए नहीं, बल्कि वैज्ञानिक और तकनीकी विशेषज्ञ बनने के लिए बाहर गए। इस तरह से जापान नें दो सौ साल की दूरी को तीन दशकों में पूरा कर लिया। यह होता है किसी समाज या देश का संकल्प,योजना और उसका क्रियान्वयन।

अब यहाँ यह सवाल सहज है कि जिस लक्ष्य को जापान ने साध लिया, उसे हम क्यों नहीं हासिल कर सकते? हम ऐसा जरूर कर सकते हैं, पर इसकी कुछ पूर्वशर्तें हैं। भारत एक उर्ध्व व क्षैतिज, दोनों ही स्तरों पर बेहद बुरी तरह विभाजित समाज है। जाति, धर्म, भाषा, क्षेत्र, संस्कृति, लिंग और वर्ग के आधार पर बना यह विभाजन वैमनस्य के साथ पूरी शिद्दत से कायम है और हर तबका एक-दूसरे को नीचा दिखाने की होड़ में लगा रहता है। इनके बीच एकता कायम करने के दो सूत्र प्रचलित हैं। एक इसे बलपूर्वक और कृत्रिम ढंग से करना चाहता है और दूसरा उदारवादी मूल्यों की बुनियाद पर।

अभी का दौर संकीर्णतावाद का है और इसमें विग्रह का तत्व अंतर्निहित है। कोरोना वायरस के प्रथम दौर में अल्पसंख्यकों को निशाना बनाया गया। यहाँ बहिष्कारवादियों को तय करना होगा कि चीनी सामान का बहिष्कार करेंगे या मुसलमान दुकानदारों और ठेले-खोमचे वालों का? अगर बहुसंख्यक वर्ग जापान की तरह आंतरिक शांति व एकता अर्जित नहीं करेगा तो फिर वह आंतरिक सामर्थ्य का निर्माण किस प्रकार करेगा और आज की दुनिया में छलांगें कैसे लगायेगा? भारतीय समाज को उदारवादी मानवीय मूल्यों के आधार पर पुनर्गठित करने का दायित्व अभी शेष है। अगर हम इस दिशा में मजबूती से आगे बढ़े, तो दुनिया भर की मानवतावादी व शान्तिकामी जमातें हमसे जुड़ने में फख्र महसूस करेंगी। तब बहिष्कार के बजाय अंगीकार का दौर चल निकलेगा।

स्वतंत्रता आंदोलन के दौर में गांधी जी ने भी विदेशी सामानों के बहिष्कार का आह्वान किया था। पर वह अभियान किसी कुंठा या प्रतिशोध की भावना से प्रेरित नहीं था। वह औद्योगिक सभ्यता के बरक्स सादगी से सराबोर जीवन का दर्शन था। उसमें किसी को नीचा दिखाने या फिर नुकसान पहुंचाने की दमित इच्छा भी नहीं थी। वे तो इंग्लैंड और पश्चिम को भी मशीनों के जंजाल से मुक्त करना चाहते थे। वह एक मानवीय सात्विक कार्यक्रम था, युद्ध का कोई प्रच्छन्न रूप नहीं।

इस टिप्पणी का उद्देश्य बहिष्कार से परे जाकर सोचने की कवायद है। हम किसी मतवाले राष्ट्रवाद के वाहक नहीं बन सकते और न ही किसी उन्मादी कार्यक्रम के हिस्सेदार हो सकते हैं। हम चीन या दुनिया के अन्य किसी भी देश, चाहे वह भारत ही क्यों न हो, के विस्तारवाद के विरुद्ध है। हम शांति और सहअस्तित्व के पक्षधर हैं।हम अपनी पक्षधरता पर अडिग हैं, अडिग रहेंगे। ❑

एक ब्राह्मण का सफाईकर्मी होना

(मुकुंद दीक्षित का पराक्रम)

❑ जयंत दिवाण

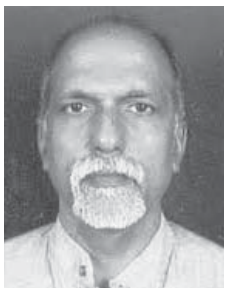

मुकुंद दीक्षित नासिक में रहते हैं। पूर्णकालिक सामाजिक कार्यकर्ता हैं। उनकी उम्र अड़सठ साल की है। नासिक की एक सामाजिक संस्था 'मानव उत्थान मंच' ने उनसे संपर्क किया। उन्होंने उनसे कहा कि संस्था सफाई खाते के कामगारों को हैंड ग्लव्स और मास्क बांटना चाहती है। उसका वितरण उनके हाथों से किया जाय, यह उनकी इच्छा है। मुकुंद ने उनसे कहा कि भाषण और फूलमाला देकर इन समाजों को वितरण करने में उन्हें दिलचस्पी नही है। कोरोना के इस संकट के समय में सफाई कामगारों के प्रति अगर कृतज्ञता व्यक्त करनी हो तो केवल वितरण नही किया जाएगा, अपितु वे स्वयं दिन भर कामगारों के साथ उनकी घंटा-गाड़ी पर बैठ कर काम करेंगे। संस्था ने उनकी यह बात मान ली।

मुकुंद व उनके दोस्त भावे सफाई खाते के दफ्तर पहुंच गये। चालीस घंटा गाड़ियां वहां खड़ी थीं। प्रत्येक गाड़ी पर चार कामगार रहते हैं। करीबन डेढ़ सौ कामगार वहां जमा थे। मुकुंद के हाथों चीजों का वितरण हुआ। वहां के अफसर ने कामगारों को उनका परिचय देते हुए कहा कि मुकुंद ने तीस वर्ष बाबा आमटे के साथ कार्य किया है और आज वे व उनके साथी भावे गाड़ी पर काम करने वाले हैं। ड्राइवर के बगल में दो कामगार बैठ गये। मुकुंद व भावे गाड़ी के पीछे खड़े हो गये। गाड़ी काम पर निकली। मोहल्ले मोहल्ले में गाड़ी जाती। लोग कचरे का डिब्बा लाते। मुकुंद व भावे डिब्बा गाड़ी में उड़ेल देते।

मुकुंद ने बताया कि उन्हें देखकर लोग कहते कि आज नये कामगार दिखायी दे रहे हैं। जब लोगों को ड्राइवर उनका परिचय देता तो लोग अचंभित होते। लोग इकट्ठा हो जाते। वहां नुक्कड़ सभा हो जाती। जाति का अंत कैसे होगा से लेकर गन्दगी के काम में दलित समाज ही क्यों है तक की चर्चा वे करते। आरक्षण की बात करते। सूखा, गीला कचरा अलग करने की अपील करते। इस तरह दिन भर गाड़ी पर उन्होंने काम किया। मोहल्ले-मोहल्ले में नुक्कड़ सभा होती रही। उनकी जाति जानकर लोग आश्चर्य में पड़ते कि ब्राह्मण होते हुए भी वे कचरे की गाड़ी पर काम कर रहे हैं।

मुकुंद ने कोई प्लानिंग नहीं की थी। अनायास ही ये जनजागरण का काम हो गया। कामगार उन्हें बता रहे थे कि बीते तीस सालों में उनके लिए आज का यह अनुभव कल्पनातीत

था। गाड़ी पर सवार होकर वे डंपिंग ग्राउंड पर गये। कचरे की गाड़ी वहां खाली की। ग्राउंड पर सूखा कचरा, गीला कचरा, मरे जानवरों, प्लास्टिक पर प्रक्रिया करने वाले प्लांट बिठाये हैं। वह उन्होंने देखे। उनके लिए भी उनका यह अनुभव अद्‌भुत था। नासिक महानगरपालिका के पास 150 कचरा गाड़ियां हैं। 450 सफाई कामगार हैं। पंधरा लोग छोड़कर सभी दलित समाज के हैं। अधिकांश कर्मचारी कॉन्ट्रैक्ट पर हैं। उन्हें जूते या अन्य साधन भी वक्त पर नहीं मिलते हैं। इसके बावजूद हम इनका करोना से लड़ने वाले सैनिकों के नाते कौतुक देख रहे हैं।

मुकुंद दीक्षित ने बताया कि वे बाबा आमटे के साथ तीस वर्ष रहे। बाबा जब वरोरा नगर पालिका के अध्यक्ष थे, तब सफाई कामगारों ने हड़ताल की थी। बाबा ने सोचा कि इनकी परेशानी को समझना है, तो इनके साथ काम करके देखना होगा। तब बाबा ने पूरे शहर के पैखाने साफ किये थे। मुकुंद कहते हैं कि यह बात उनके अचेतन मन में रही होगी, जिसने उन्हें आज कचरा गाड़ी पर काम करने के लिये प्रेरित किया होगा। उनके दोस्त भावे अखबार बेचते हैं और आम आदमी पार्टी के कार्यकर्ता हैं। आजादी के आंदोलन में भंगी मुक्ति, हरिजन सेवा, अस्पृश्योद्धार आदि रचनात्मक कार्य होते रहे थे। महाराष्ट्र के आप्पासाहब पटवर्धन, बाबा आमटे और वालूंस्कर ने जीवन भर यह कार्य किया। सवर्णों की मानसिकता बदलने की कोशिश की। आम्बेडकर के दलित मुक्ति संघर्ष में इस कार्य से अनुकूल वातावरण बना। लेकिन वह बात अब पीछे छूट गयी थी। इसे डॉ यशवंत सुमंत ने नये तरीके से रखा। गांधी और आम्बेडकर एक दूसरे को पूरक हैं। यह परस्पर पूरकता ही जाति के अन्त का मार्ग है। महाराष्ट्र के सर्वोदय के कार्यकर्ताओं, मुख्यतः विनोबा आश्रम के विजय दिवाण ने महात्मा फुले के पुणे के घर से महात्मा गांधी के सेवाग्राम आश्रम तक पदयात्रा निकाली थी। उसी की अगली कड़ी के रूप में मैं मुकुंद दीक्षित व भावे के इस अनोखे काम को देखता हूँ। मुकुंद का कहना है कि इस अनुभव से उन्हें लगता है कि दो तीन घंटा कचरा गाड़ी पर काम करने की मुहिम को जनांदोलन बनाया जा सकता है क्या? इस बारे में सोचना चाहिए। जाति के अंत की दिशा में इस उपक्रम से समाज आगे बढ़ेगा, ऐसी उनकी धारणा है।

मुकुंद दीक्षित व भावे को मैं इस काम के लिए बधाई देता हूँ और उन्हें क्रांतिकारी सलाम करता हूँ। ❑

गतिविधियां एवं समाचार

दिल्ली दंगों के संबंध में दिल्ली पुलिस द्वारा पूछताछ पर प्रो. अपूर्वानंद का मीडिया को दिया गया बयान

'फरवरी, 2020 में उत्तर-पूर्व दिल्ली में हुई हिंसा से संबंधित एफआईआर 59/20 के तहत दिल्ली पुलिस की विशेष स्पेशल सेल द्वारा मुझे 3 अगस्त, 2020 को जांच के सिलसिले में बुलाया गया। वहाँ मैंने पाँच घंटे बिताए। दिल्ली पुलिस ने आगे की जांच हेतु मेरा मोबाइल फोन ज़ब्त करना ज़रूरी समझा। पुलिस अथॉरिटी के अधिकार क्षेत्र और घटना की पूर्ण रूप से निष्पक्ष जांच के विशेषाधिकार का सम्मान करते हुए यह उम्मीद की जानी चाहिए कि इस पूरी तफ्तीश का उद्देश्य शांतिपूर्ण नागरिक प्रतिरोध और उत्तर-पूर्वी दिल्ली के निर्दोष वाशिंदों के खिलाफ हिंसा भड़काने और उसकी साजिश रचने वालों को पकड़ना होगा।

इस जांच का मकसद नागरिकता संशोधन कानून 2019, भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय जनसंख्या पंजीकरण और राष्ट्रीय नागरिकता पंजीयन के खिलाफ सांवैधानिक अधिकारों और तरीकों से देश भर में अपना विरोध दर्ज़ कराने वाले प्रदर्शनकारियों व उनके समर्थकों का उत्पीड़न करना नहीं होना चाहिए।

यह परेशान करने वाली बात है कि एक ऐसा सिद्धान्त रचा जा रहा है, जिसमें प्रदर्शनकारियों को ही हिंसा का स्रोत बताया जा रहा है। मै पुलिस से यह अर्ज़ करना चाहता हूँ और यह उम्मीद करता हूँ, उनकी जांच पूरी तरह से निष्पक्ष और न्यायसंगत हो, ताकि सच सामने आए।

जम्मू कश्मीर में मानवाधिकारों की बहाली हो-जसवा

5 अगस्त को जम्मू-कश्मीर की स्वायत्तता खत्म करने को एक वर्ष पूर्ण हो गया। केंद्र सरकार ने यह निर्णय लेते समय कहा था कि आतंकवाद खत्म करने व विकास के लिए यह कदम उठाया गया है।

यह निर्णय लागू करते ही केंद्र सरकार ने प्रदेश के नेताओं को हिरासत में ले लिया था, जिनमें से अब कुछ नेताओं को छोड़ दिया गया है। लेकिन महबूबा मुफ्ती, जिनके साथ भाजपा ने प्रदेश में सरकार बनायी थी, की हिरासत अवधि तीन महीने के लिए और बढ़ा दी गयी है। कांग्रेस नेता प्रो. सैफुद्दीन सोज की रिहाई का केस सुप्रीम कोर्ट में था। प्रदेश सरकार ने कोर्ट में कहा कि प्रो. सोज हिरासत में नहीं हैं। कोर्ट ने केस खारिज कर दिया। इसके बावजूद प्रो सोज को घर से बाहर निकलने नहीं दिया जा रहा है। केंद्र सरकार का यह रवैया अधिनायकवादी है। जसवा इसका विरोध करती है।

प्रदेश में इंटरनेट सेवा 2-जी तक सीमित है। यह अधिव्यक्ति की स्वतंत्रता पर कुठाराघात है। यह एक प्रकार से संवाद पर लगायी गयी पाबंदी है। संपर्क माध्यम अंशतः शुरू हैं। स्कूल कॉलेज शुरू से ही बंद थे। अब ऑनलाइन शिक्षा भी बंद है। यह प्रदेश देश का ही हिस्सा है। वहां की स्थितियों को नजरअंदाज नहीं किया जा सकता। हम प्रदेश के नागरिकों और उनके मानवाधिकार के साथ है। जनमुक्ति संघर्ष वाहिनी (जसवा) मांग करती है -

1. जम्मू-कश्मीर के सारे राजनैतिक, लोकतांत्रिक अधिकार बहाल किये जायें। 2. प्रदेश में तुरंत चुनाव हो व विधानसभा गठित की जाये। 3. प्रदेश को राज्य का दर्जा पुनः बहाल किया जाये। 4. महबूबा मुफ्ती सहित सभी नेताओं, कार्यकर्ताओं को हिरासत से मुक्त किया जाये। 5. 4-जी इंटरनेट सेवा की बहाली हो। प्रसार माध्यम मुक्त हों। **-जयंत दिवाण**

श्रद्धांजलि

बिमल चन्द्र पाल

सर्व सेवा संघ के भूतपूर्व मंत्री तथा पश्चिम बंगाल सर्वोदय मंडल के भूतपूर्व अध्यक्ष बिमल चन्द्र पाल का 3 अगस्त 2020 की रात 2.30 बजे खड़गपुर के पास बेलदा में निधन हो गया। वे 88 वर्ष के थे। उन्होंने खादीग्राम में रहकर धीरेन्द्र दा से ग्राम सेवा की दीक्षा पायी थी। 1956 में उन्होंने बंगाल-उड़ीसा सीमा पर प. मिदनापुर में श्रम विद्यापीठ आश्रम की स्थापना की, जहां खादी उत्पादन तथा सांप्रदायिक सद्भाव जैसी रचनात्मक गतिविधियां चलती थीं। भूदान के दौरान उन्होंने विनोबा की बंगाल यात्राओं का संयोजन किया तथा मुंगेर में स्वयं भी भूदान अभियान चलाया। बाद में विनोबा ने बिमल दा को वल्लभ स्वामी को सौंप दिया, जहां उन्होंने एक स्वयंसेवक की भांति काम किया। संपूर्ण क्रांति आंदोलन में उनकी विशेष भूमिका रही। जेपी द्वारा गठित ग्राम निर्माण समिति में भी वे शामिल रहे। सर्व सेवा संघ के अलावा गांधी स्मारक निधि तथा गांधी शांति प्रतिष्ठान को भी उनकी सेवाओं का लाभ मिला। चंपारण सत्याग्रह की शताब्दी के अवसर पर सर्व सेवा संघ ने उन्हें 'सर्वोदय सम्मान' से सम्मानित किया था। उनके निधन से सर्वोदय आंदोलन की भारी क्षति हुई है।

वनमाला रोडे

सर्व सेवा संघ की राष्ट्रीय कार्यकारिणी और सर्वोदय जगत के संपादक मंडल के सदस्य सोमनाथ रोडे की धर्मपत्नी सौ. वनमाला रोडे का 28 जुलाई 2020 को सायंकाल 4 बजे लातूर, महाराष्ट्र में निधन हो गया। वे 67 वर्ष की थीं। पिछले दो महीने से वे पीलियाग्रस्त थीं, जिसके चलते उनका लिवर खराब हो गया था। हैदराबाद के एक अस्पताल में उनका लंबा इलाज चला, लेकिन लिवर का ट्रांसप्लांट अधिक आयु के कारण संभव नहीं हुआ। अपने पति सोमनाथ रोडे के सर्वोदय आंदोलनों और सामाजिक कार्यों में उनका योगदान उल्लेखनीय था। उन्होंने घर गृहस्थी और बच्चों के साथ अपने परिवार की जिम्मेदारी इतनी दक्षता से संभाली कि कई बार वे निश्चिन्त होकर 4-5 महीने तक घर से बाहर रहकर अपनी सामाजिक गतिविधियों में लगे रहते थे। वैवाहिक जीवन का 48 वर्ष का साथ छूटने पर सोमनाथ रोडे व्यथित मन से कहते हैं कि अब बहुत अकेला महसूस कर रहा हूं। जब तक वे रहीं, तब तक मुझे घर, परिवार और आगंतुकों की चिन्ता कभी नहीं रही। पति के अलावा वे अपने पीछे दो बेटियों और एक बेटे का भरा पूरा परिवार छोड़ गयी हैं।

सर्व सेवा संघ बिमल दा एवं वनमाला रोडे को नमन करता है और विनम्र श्रद्धांजलि अर्पित करता है।

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2020
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

कविता

युग देवता

❑ अतुल चन्द्र हजारिका

हे महामानव, महात्मा गांधी!
युग देवता - युग अधिनायक तुम्हीं
आये थे धरती के पुण्य के कारण
किया था शतधन्य भारतवर्ष
पूत पवित्र हमारी आर्यभूमि।
पहचान न सके हम
समझ न सके महिमा तुम्हारी
तुम्हीं कृष्ण - तुम्हीं ईसा
तुम्हीं बुद्ध - अहिंसा के पूर्ण अवतार।
पाप-कलुष से भरे इस जगत में
जीर्ण-शीर्ण, शुष्क मरुहृदय में
सुनाई तुमने शांति की सुशीतल वाणी
डाल दिया प्रेम का स्निग्ध मंदाकिनी पानी
खिलाया नंदन का देव-पारिजात
तृप्त हम - दीप्त हम तुम्हारी महिमा में।
भाई के रक्त से सिक्त, नोआखाली बिहार के
गांव-गांव, घर-घर, द्वार-द्वार,
अहिंसा की मुक्तिमाला बिखर गयी।
हाथ में लाठी लेकर अहिंसा के पुजारी ने
जीर्ण देह से पैदल किया भ्रमण।
बुझा दिया हिंसा का प्रज्ज्वलित दावानल
अमृत के प्रेम-राज्य का किया सृजन।
हे महान! हम हैं तुम्हारे ऋणी
भाग्यनिपीरित हम असम संतान
दिया तुमने प्राणदान, जिस दिन हमारे प्रति
भारत के जननेता सभी विमुख
किसी ने भी न समझा असम माता का दुख
उसी दिन केवल एकमात्र तुमने ही
डाल दी संजीवनी मुख में
गूंजती जागृत वाणी सुनायी कान में
अन्यथा शकुनि का पासा खेल में
न रहता हमारा स्थान भारत-हृदय में।
हे जाति के पिता!
बने तुम भारत के भाग्यविधाता
निज हाथ से की रचना
नवभारत के पवित्र स्वाधीनता तंत्र की
उच्चरित किया भारत-त्याग का मंत्र
सुनकर वही रुद्र वाणी
सप्तसिन्धु हो उठा तरंगित
ब्रिटिश केसरी भय से हुआ कम्पित
ससम्मान चले गये इस देश से विदा होकर।
हे नंगे फकीर!
दिग्विजयी महाबाहु तुम हो महावीर
सागर सहित धरती हुई कम्पमान
उठे अहिंसा के गान
स्तब्ध हुआ मरणास्त्र बंदूक-कमान।
अंगुली के संकेत से तुमने
मोहनदास की जादू की मोहिनी शक्ति से
बिना युद्ध, बिना रक्तपात के अधिकार कर लिया
दिल्ली राजघाट पर
लाल किला फिर हुआ इतिहास प्रसिद्ध।
किन्तु उस दिन भी तुम थे युग-देवता
नहीं कुछ भी स्वीकारा
राजपद, सिंहासन दिया ठुकरा
कर विषपान बने नीलकंठ
रघुपति राजा राम पुण्य नाम गाकर
अल्लाह और ईश्वर का समन्वय करके
कुरान-पुराण-'घोषा'-गीता बाइबिल
एक सूत्र में दिये बांध।
हरिजन हुए नर-नारायण
दलित, पीड़ित, तपित को तुमने
स्थान दिया हृदय में गले लगाकर।
यही है व्यास-वशिष्ठ का देश
यही है महामंत्री चाणक्य का देश
दिखाया तुमने जगत को फिर एक बार
भारत के महर्षि-त्याग का प्रतीक
निज हाथ से राज कर निर्मित
किन्तु स्वयं राजदंड ग्रहण न कर
यही है भारत का सनातन धर्म।
इसी तरह रहने में एक दिन
बज उठे एकाएक प्रलय नाद
बिन मेघ हुआ वज्रपात
हृदय पर लगा गोली का आघात
यमुना तीर पर तुमने
भारतवासियों पर किया वज्रपात
समाप्त किया तुमने अपना जीवन-नाटक!
हे मोहनदास करमचंद गांधी!
शांति राज्य, रामराज्य, न हुआ स्थापित
रहे अपूर्ण तुम्हारे स्वप्न
हिंसा-उन्मत्त देश में हुआ घोर अंधकार।
दुर्नीति, अनाचार ने घेर आकाश चतुर्दिश
दीनता-हीनता की दुन्दुभि दी बजा
शक्ति-लोभ ने, हाय!
मनुष्य को नीचे दिया गिरा
दी मनुष्यता भुला, दलित का किया रक्तपान
धन-दौलत बांधी पर्वत समान
पाप का व्यापार कर कितने जनों ने
भुला दिया हिताहित ज्ञान,
स्वार्थ के आगे जाना तुच्छ देश-सम्मान!
उछालें भरने लगा प्रलय समुद्र
कलि की धूल से ढंक गयी धरती
देवता का अभिशाप लेकर यम आया है नीचे
अतिवृष्टि, अनावृष्टि, दुर्भिक्ष, प्लावन।
शीत से मारे, लू से मारे
बेईमान पुतले बांट रहे हैं
जनता में विष का राशन।
तदुपरि—
चोर, लुटेरे, हत्यारे और लूटपाती
बढ़े जा रहे पागल बाढ़ के समान
तुम्हारे पुण्य से स्वाधीनता प्राप्त कर
पाप-पुण्य समुद्र में रहे बहा।
हाय! हाय! हाय!—
मनुष्य-जीवन-मूल्य आज नगण्य
कुत्ते-बिल्ली समान
कितने निर्दोष जीव हो रहे समाप्त
राजपथ, रेलपथ, शिक्षा प्रांगण में
क्यों है बहती रक्तगंधा अनायास?
आज है पुण्य तिथि, हे! स्वर्ग-अतिथि!
आविर्भाव दिन तुम्हारा
प्रार्थना यह करता हूं, दो आशीर्वाद
भारत और जगत का नष्ट हो प्रमाद
ध्वंस हो पूरी तरह दुर्नीति का दानव
तृप्त हो, दीप्त हो सकल मानव
न्यायपरायण हो शासक दल
प्रजा के दुख में राजा भी हो विह्वल
दलादलि, हिंसा-हिंसी, अप्रीति-शत्रुता
चोर व्यापारी दल का नाश हो समूल
स्वार्थ एवं सत्ता-लोभ का हो समूल नाश
समस्त मानव हों सुस्थित एवं शांत
एक-दूसरे को भाई लगायें गले
घर-घर में सौभाग्य-पुष्प फलें
तुम्हारा कल्पित रामराज्य धर्मराज्य हो स्थापित
शुभ्रनील हिमाद्रि उच्च शृंखला में
जल-स्थल में, नभमंडल में
समान मैत्री, प्रेम-दया हो विकसित
अशोक चक्र घूमता करता आलोड़न
हो महा दीप्तिमान!
महाभारत का, महामानव का
चिर उच्च तिरंगा निशान
हे महात्मा गांधी! तुम्हारे प्रति
मैं करता आज के दिन शत दंडवत प्रणाम।

मूल असमिया से हिन्दी अनुवाद : ज्ञानेन्द्रनाथ फूकन

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार